भारतीय औषधिविज्ञान का इतिहास।

लेखक—श्रीयुत रमेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार।

प्राक् ऐतिहासिक काल।

नश्वरता और मृत्यु जीवन के साथ सदा इकट्ठे रहे हैं। इस क्षयशील और नश्वर जीवन के साथ जब से रोग प्रारम्भ हुआ तभी से मानवीय बुद्धि के उषाकाल के साथ साथ रोग का अध्ययन और उसकी चिकित्सा भी अवश्य रोग के समकालीन होनी चाहिये। दवा चिकित्सा से कुछ भिन्न वस्तु है, और मानवीय स्मृति के प्रारम्भ के साथ साथ औषधियाँ चिकित्सा का एक आवश्यक अङ्ग बन गई हैं, इस प्रकार का विचार असम्भव प्रतीत होता है। सृष्टि का आदिम मनुष्य (Primitive man) उन चीजों को अवश्य चिकित्सा-द्रव्य और दवा के रूप में इस्तैमाल करता होगा जिन्हें वह अत्यन्त सुगमता से प्राप्त कर सकता होगा।

वनस्पतियों के पोषक गुणों और चिकित्सागुणों का बहुत कुछ ज्ञान आदिम मनुष्य ने उसी तरह अनुभव से प्राप्त किया होगा जिस तरह क्षुद्र प्राणी करते हैं। उनकी तरह उसने भी अनुभव का फायदा उठाया होगा और अनुकरण ने उसे क्षुद्र प्राणियों की आदतों को ध्यान से देखना सिखाया होगा। भोजन के लिये जब उसे शिकार में पकड़े हुए जङ्गली जानवरों पर ही मुख्यतया निर्भर रहना होता होगा तो उसके लिये यह बहुत अधिक महत्वपूर्ण होना चाहिये कि वह उनको बहुत नज़दीकी से देखे जिससे उनकी आदतों को जान सके। उसका जीवनक्रम इस प्रकार का था कि उसे अपने जीवन-निर्वाह की सामग्री जुटाने के लिए तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए घने जङ्गलों की छायाओं को चीरते हुए पहाड़ों की अगम्य ऊँची चोटियों तक भटकना पड़ता था और इससे स्वभावतः ही वह वानस्पतिक जगत् के अधिक सम्पर्क में आता था। इसके अतिरिक्त अत्यन्त आवश्यकता के कारण किये गये असंख्य परीक्षणात्मक प्रयत्नों से और उनके परिणाम रिवाज या परम्परा के रूप में उनमें प्रचलित हो जाने से सम्भवतः बहुत सी उपयोगी वनस्पतियों के पोषक, उत्तेजक और चिकित्सागुण पहले पहल मालूम हुए होंगे। भोजन से परिपूर्ण किसी विशेष स्थान पर जाकर अपनी भोजन-प्राप्ति की शृङ्खला को अधिक विस्तृत करने के उद्देश्य से किए गए प्रयत्नों में अकस्मात् ही उसे बहुत कुछ वानस्पतिक चिकित्सा का ज्ञान होता गया होगा।

आदिम मनुष्य रोग से छुटकारा प... जादू के रूप में उपयोग अवश्य करता होगा। संसार के सब भागों ... नी हम अनेक प्रकार के

विचित्र रिवाज़ पाते हैं। दक्षिणीय यूरोप में यात्रियों को बच्चे जो फूलों के गुच्छे भेंट करते हैं उसके पीछे कभी कभी यह इरादा छिपा होता है कि उनके घरों में विद्यमान रोग उन फूलों के गुच्छों के साथ चला जाय। थुरिंजिया में बीमार आदमी को रोवान-वेरोज़ की एक रस्सी, एक चिथड़ा या कोई भी छोटी सी चीज छुआ कर अरण्य-पथ के पास की किसी झाड़ी पर लटका दी जाती है, वहां से गुजरते हुये जिस आदमी को यह छू जाय उसे रोग लग जायगा और रोगी व्याधि से मुक्त हो जायगा। मेक्सिको से भारत और इथोपिया से आयर्लैंड तक सब जगह पवित्र स्थानों के पास वृक्षों के ऊपर चिथड़े, बालों के गुच्छे तथा अनेकविध पदार्थ टांग देने का रिवाज है मानो वे वृक्ष वास्तव में रोग को ग्रहण करने वाले और भक्तों की कामना पूरी करने वाले हों। अफ्रीका के भूतों के वृक्ष और सिन्ध के पवित्र वृक्ष उन चिथड़ों से भरे होते हैं जिनमें भक्तों ने अपनी विपदायें छोड़ दी हैं। हरिद्वार में पहाड़ पर स्थित मनसा देवी और प्रसिद्ध चण्डी-मन्दिर के आसपास जङ्गली उगे हुये हरश्रृङ्गार के वृक्षों पर बँधे हुये रङ्ग-बिरंगे चिथड़ों की ओर हमारा कई बार ध्यान गया है। मन्दिर के चारों ओर फैली हुई पवित्र कुशा घास में अपने संकल्पों की गाँठ बाँधते हुये हमने अनेक भक्तों को देखा है।

खुदा की छाप का सिद्धान्त (Doctrine of Signtaures)

इस प्रकरण में हमें खुदा की छाप के सिद्धान्त को नहीं भूलना चाहिए। वानस्पतिक जगत् के किसी पदार्थ का प्राणि-जगत् के किसी रोग या अङ्ग से रूप रंग में सादृश्य इस सिद्धान्त का आधार था। बाह्य आकृति में पौधा जिस रोग से मिलता जुलता होता था उस रोग को अच्छा करने के गुण भी उसी पौधे में समझे जाते थे। शरीर के रचना और क्रियाविज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण आदिम मनुष्य यह सोचता था कि इन पदार्थों का उन अङ्गों पर कुछ कार्य होता है जिनसे ये आकृति या रंग में सादृश्य रखते हैं और उसका यह विश्वास था कि परमात्मा पौधे में इन विशेष गुणों की ओर संकेत कर रहा है। किसी पौधे के चिकित्सागुणों को ढूँढ़ निकालने का यही तरीका अख़्त्यार किया जाता था।

वानस्पतिक औषधियों के इतने अधिक व्यापक रूप में उपयोग का एक कारण यह भी हो सकता है कि पौधे सर्वत्र सुलभ होते हैं, संख्या में भी बहुत अधिक हैं, विभिन्न रूपों में मिलते हैं और बिना कष्ट एवं प्रयत्न के इनकी प्राप्ति हो जाती है। शिवलिंगी के बीजों की आकृति शिवलिंग जैसी होने से और उसके चपटे पृष्ठ पर शिवलिंग का रूप बना होने से, खुदा की छाप के सिद्धान्त के अनुसार, ये बीज पुंस्त्वशक्ति की कमी और इसी प्रकार के अन्य लैंगिक रोगों के लिए औषधि रूप में प्रयुक्त किये जायेंगे। इसी सिद्धान्तानुसार ग्रौमवेल के पत्थर जैसे कठोर बीज पथरी के लिए अवश्य उपयोगी होने चाहिएं और स्क्रौफुलेरिया के ग्रन्थिल कन्द स्क्रौफुलस ग्लैण्ड्स (क्षयी ग्रन्थियों) के लिए। जब लोग कामला से ग्रस्त होते थे, जिसमें त्वचा का रंग पीला हो जाता है, तो उन्हें

औषधि के रूप में हल्दी लेने की सलाह दी जाती थी। लोमड़ी के श्वास प्रश्वास की अधिक शक्ति के कारण उसके फेंफड़े श्वास (दमे) के लिए अच्छे समझे जाते थे। इसी विचार से कई जंगली आदमी हरिण के मांस को इसलिये नहीं खायेंगे कि वे डरपोक हो जायेंगे जब कि शेर के दिल के लिए वे कुछ भी मूल्य देने के लिए तय्यार होंगे, तथा एक शूर वीर योद्धा का ख़ून और मांस भी खा पी जाएँगे जिसे उन्होंने युद्ध में परास्त किया है, इस उद्देश्य से कि उनमें भी वह निर्भयता और साहस भर जायगा जो उनके प्रतिद्वन्द्वी में था। इसी प्रकार नाक या किसी दूसरे हिस्से से खून बहने पर फूलों के राजा गुलाब का जादू बहुत प्रचलित था। इस जादू के सम्बन्ध में कई गीतियाँ प्रसिद्ध थीं, जैसे–अबेक, बबेक, टबेक, क्राइस्ट के बाग में तीन गुलाब लगे हुए हैं–एक भले भगवान् के लिए, दूसरा भगवान् के खून के लिए और तीसरा देव जब्राईल के लिए, खून! मैं तुझ से प्रार्थना करता हूँ बहना बन्द हो जा।

इस खुदा की छाप के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं और यह खुदा की छाप भी कई पौधों के चिकित्सा–द्रव्य के रूप में उपयोग किये जाने के लिए कारण हो सकती है। कुछ काल के अनुभव के बाद खुदा की छाप की कसौटी पर जो पौधा उस विशेष रोग को अच्छा करने के गुणों पर ठीक न उतरता होगा उसका प्रयोग छूटता गया होगा और इसके लिए मनुष्य का दिमाग़ कुछ और स्पष्टीकरण ढूंढ़ निकालने की कोशिश करता होगा।

इस प्रकार खुदा की छाप के सिद्धान्त और पूर्व प्रतिपादित परिस्थितियों के साथ साथ बुद्धि का उपयोग करता हुआ और अनुभव का लाभ उठाता हुआ आदिम मनुष्य बहुत से पौधों के चिकित्सोपयोगी गुणों को जान गया होगा। पौधे के सम्बन्ध में जो कुछ भी उसने ज्ञान इकट्ठा किया होगा यद्यपि वह उसकी आँखों से एक आधुनिक वनस्पति–शास्त्रवेत्ता की दृष्टि से तो नहीं देखा जाता होगा परन्तु किसी पौदे के गुणों को प्रकट करने के संकेत रूप में वह उसके रंग, आकृति, स्वाद और गन्ध को बहुत ध्यान से देखता होगा और इस तरह वानस्पतिक ज्ञानोपार्जन में सम्भवतः कई सौ शताब्दियाँ गुजर गई हों। यह भी सर्वदा सम्भव है कि पुरखों ने एक बार पौधों का जो ज्ञान और अन्वेषण कर लिया हो वह वर्तमान संसार को इसलिए न मिल सका हो कि वे पौधों के वर्णन या श्रेणीकरण का कोई तरीक़ा नहीं जानते थे और न उन्हें लेखन–कला या किसी अन्य ऐसे साधन का ज्ञान था जिससे अपने अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाया जा सकता हो। जिन औषधियों को आदिम मनुष्य इस्तैमाल करता था यद्यपि उनका कोई उपलब्ध रिकार्ड नहीं है परन्तु जहाँ तक इतिहास का ताल्लुक है हम कह सकते हैं कि चिकित्सा एक बहुत प्राचीन कला है और औषधियाँ उस अन्यन्त प्राचीन काल से उपयोग में आरही हैं जितने पीछे इतिहास हमें ले जासकता है।

× × × × ×

वैदिक काल।

भारत में औषधि का इतिहास बहुत अधिक प्राचीनकाल से खोजा जा सकता है। भारतीयों को ही इसका गौरव प्राप्त है कि संसार के किसी भी देश के मूल निवासियों की अपेक्षा भारत के निवासी इतने अधिक चिकित्सोपयोगी पौधों से परिचित थे।

आयुर्वेदिक इतिहास वैदिक काल से आरम्भ होता है। पौधों के चिकित्सा प्रयोग का सब से पहला वर्णन ऋग्वेद में पाया जाता है, और ऋग्वेद मानवीय ज्ञान के संग्रहालयों में उपलब्ध पुस्तकों में सब से प्राचीन समझा जाता है। कई आधुनिक विद्वान् इसे ४५०० और १६०० ईस्वी पूर्व के बीच में लिखा बताते हैं। इस ग्रन्थ में हमें इस विषय का बहुत अद्‌भुत ज्ञान मिलता है। ऋग्वेद के कई मन्त्रों में सोम औषधि का वर्णन और मनुष्य के शरीर पर उसके प्रभावों का विचित्र वर्णन है। नवें मण्डल में तो सोम का ही उल्लेख है। यह एक पवित्र पौधा माना जाता था और उसका रस यज्ञ आदि शुभ कार्यों में प्रयुक्त किया जाता था। इसके सेवन से बल और बुद्धि बढ़ती थी और हरप्रकार की व्याधि दूर होकर अमरता प्राप्त होती थी। यह पौधा आजकल अज्ञात है। ऋग्वेद के मण्डल १०, सूक्त ९७, मन्त्र १ से ज्ञात होता है कि उस काल में एक सौ सात औषधियों का ज्ञान था।

अग्नि, वायु और पञ्चमहाभूत और विशेषकर सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह वेदों में अधिक उच्च देवता माने गये हैं; परन्तु हम वनस्पतियों और पौधों को भी अनेक मन्त्रों में देवताओं के रूप में देखते हैं और उन से भी इष्टपूर्ति की प्रार्थनायें उसी तरह की गई हैं जिस तरह अन्य देवताओं से। पापों से मुक्त होने (यजु० अ० १२, म० ९८), रोग रहित होने (यजु० अ० १२, म० ७६, ९५), शक्ति प्राप्त करने (यजु० अ० १२, म० ९३, ९४), दीर्घायु होने (यजु० अ० १२, म० १००) आदि के लिये औषधियों से प्रार्थनायें वेदों में मिलती हैं। अधिकांश स्थलों पर औषधि और रोग दोनों का नाम नहीं दिया गया है और वेद के अन्य देवताओं की स्तुति और प्रार्थना की तरह औषधियों की प्रार्थना और स्तुति में सूक्त और मन्त्र लिखे गये हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

"हे वीरुत्! तूने मधु से जन्म पाया है। मैं तुझे मधु से ही खोदता हूँ। तू मधु से उत्पन्न हुई है इस लिए हमें भी मधुरता दे। हे लते! तू मेरी जीभ के अग्रभाग में शहद की तरह विद्यमान हो, जिह्वामूल में तो और भी अधिक मधुरता ला दे। हे लते! तेरे सेवन से मेरे शरीर और मन की क्रियायें माधुर्य रस वाली हो जायें, मेरा दूसरों के पास आना जाना मधुर हो, मेरी वाणी माधुर्य बरसाती हो, मैं शहद की तरह मीठा दीखूं। हे लते! तेरे सेवन से अब मैं शहद से और शहद चुआते हुए शहद के छत्ते से भी अधिक मीठा हो गया हूँ। हे लते! तू मुझ में समा जा।"*

---

*इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि॥

मरणासन्न व्यक्ति की चिकित्सा के लिए किन्हीं दस बूटियों को उखाड़ कर मन्त्र बोला जाता था--"हे दशवृत्तो ! रोगों से पकड़े हुए इस पुरुष को छुड़ाओ । जिन रोगों ने इसके जोड़ों को पकड़ रखा है उन से इसे मुक्त करो । हे वनस्पतियो ! इस मृतप्राय व्यक्ति का उद्धार करके इसे जीवितों के लोक में पहुँचा दो, इसे जिला दो ।"❀

आठवें सूवत में भी औषधि का नामोल्लेख नहीं है परन्तु उसके अनुपान का वर्णन है, यथा- "यह उषःकालीन शत्री समाप्त हो जा । जिस तरह समाप्त होती हुई रात अँधेरे को नष्ट कर देती है उसी तरह सम्पूर्ण शरीर के रोगों को दूर करने वाली, पैत्तिक रोगोंका नाश करने वाली यह औषधि रोगों को दूर करदे । कपिल वर्ण अर्जुन काण्ड की लकड़ी के टुकड़े, जौ की भूसी और तिलमञ्जरी के साथ यह रोगों को दूर करे । हे रोगी ! तेरी रोगशान्ति के लिए बैल जुते हुए हलों को नमस्कार हो, हल और जुओं को नमस्कार हो, खाली हो गये घरों को नमस्कार हो, रोगी का सन्देशा ले जाने वालों को नमस्कार हो, खेतों के पालक देवता को नमस्कार हो । रोगों को नाश करने वाली औषधि ! इसके रोग को निकाल दे ।"×

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
मम देहक्रतावसौ मम चित्तमुपायसि ॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसदृशः ॥
मधोरस्मि मधुतरो मधुधान्मधुमत्तरः ।
माभित् किल त्वं वनाः शाखा मधुमतीमिव ॥
अथर्व, काण्ड १, अनुवाक ६, सूक्त ३४ ।

❀दशवृत्त मुञ्चेमं रत्तसो ग्राह्या अधि मैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ॥
अथर्व, काण्ड २, अनुवाक २, सूक्त ६, मन्त्र १ ।

×अपेयं शत्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिक्रत्वरीः ।
वीरुत् त्तेत्रियनाशन्यपत्तेत्रियमुच्छतु ॥
बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपञ्च्या ।
वीरुत् त्तेत्रियनाशन्यपत्तेत्रियमुच्छतु ॥
नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः ।
वीरुत् त्तेत्रियनाशन्यपत्तेत्रियमुच्छतु ।
नमः सनिस्रसात्तेभ्यो नमः संदेश्येभ्यः ।
नमः त्तेत्रस्य पतये वीरुत्त्तेत्रियनाशन्यपत्तेत्रियमुच्छतु ॥
अथर्व, काण्ड २, अनुवाक २, सूक्त ८, मन्त्र २ से ५ तक ।

जिन औषधियों का नाम से उल्लेख मिलता है उनसे भी प्रायः रोगादिकों को सामान्य रूप से दूर करने के लिये या शत्रुओं को नष्ट करने के लिये प्रार्थनायें की गई हैं। किसी रोग विशेष में औषधि का प्रयोग नहीं किया गया। अपने कथन को हम उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं।

अपामार्ग आयुर्वेद में मूत्रल और अनुलोमक आदि गुणों वाला माना गया है, पर वेद में हम इसके सम्बन्ध में विस्तृत प्रार्थना पाते हैं—"भूख और प्यास से मनुष्यों का मरना, गौओं का अभाव, सन्तान न होना, जूए में हारना, इन सबको हे अपामार्ग ! हम तुझसे समेट कर नष्ट कर देते हैं। सब औषधियां अपामार्ग के वश में हैं। यह सबसे अधिक प्रभावकारी है। हे रोगी तेरे अन्दर घर किये हुये रोगादि को मैं इस अपामार्ग से नष्ट कर देता हूँ जिससे तू देर तक नीरोग बना रह॥। हे अपामार्ग ! माता पिता से प्राप्त रोग, शत्रु के दिये गये शाप, पिशाच और दारिद्र्य, सबको हमसे परे कर दे×।" "हे औषधि ! तू शत्रुओं की नाशक है। अकारण ही जो मेरे शत्रु हो गये हैं उनको भी तू काट डालने वाली है। शत्रु द्वारा मेरे पुत्र पौत्रादिकों पर किये गये बुरे प्रभाव को वर्षा में उग आने वाले नड़ को काटने की तरह काट डाल। नृषद के पुत्र कण्व नाम के ब्राह्मण ने तुझे प्रयुक्त किया था, इसलिये हे दीप्तिमती औषधि ! तू सेना की तरह रक्षा करती है, जिस स्थान पर तू मिल जाती है वहाँ डरने का कोई काम नहीं। सबको प्रकाशित करते हुये सूर्य का जिस तरह सब ज्योतियों में सर्वप्रथम स्थान है उस तरह औषधियों में तेरा सर्वप्रथम स्थान है। अपनी सामर्थ्य से दोषों को जलाती हुई तू दुर्बल की रक्षक है और उनको कष्ट देने वाले रोग की नाशक है। पहले तेरे द्वारा इन्द्रादिकों ने असुरों को परास्त किया था इसलिये तू अन्य औषधियों से श्रेष्ठ है और तू अपामार्ग के रूप में उत्पन्न हुई है। तेरे में से सैकड़ों

॥ क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ॥
तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ॥
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ॥

अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक ४, सूक्त १७, मन्त्र ६, ७, ८।

× अपामार्गोपमार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः।
अपमृज्म यातुधानानप सर्वा अराय्यः।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे ॥

अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक ४, सूक्त १९, मन्त्र ७ और ८।

शाखायें फूट निकलती हैं, ज़मीन को फाड़कर तू उत्पन्न हुई है इसलिये हमारी हानि करने वाले शत्रुओं को तू फाड़ दे, चीर डाल। हे औषधि! तुझसे निकला हुआ तेज तेरे आसपास जिस भूमि में व्याप्त है उस भूमि पर शत्रुओं का प्रभाव नहीं होता। उस स्थान से शत्रुओं का प्रभाव जल जाय और शत्रु के साथ ही पहुँच जाय। हे उलटे फल वाले अपामार्ग! तेरे फल सदा उलटे ही उत्पन्न होते हैं। शत्रुओं से दिये गये सब शापों को मेरे से दूर कर दे और उन्हें शाप देने वाले के पास ही पहुँचा दे, शत्रु के मरने के विस्तृत साधनों को मेरे से दूर कर दे। हे अपामार्ग! मुझे सैकड़ों और हजारों प्रकार के शत्रुओं के आक्रमण से बचा। हे औषधियों के स्वामी! उग्र बल वाला इन्द्रदेव तुझे ओज दे*।"

चरक और सुश्रुत में पृश्निपर्णी स्वतन्त्र रूप से कोई महत्वपूर्ण भाग नहीं लेती परन्तु अथर्ववेद में इसकी स्तुति में पूरा एक सूक्त है यथा—"देवी पृश्निपर्णी हमारा कल्याण करे और हमारे पाप को खा जाय। पाप के नाश करने में यह बड़ी उग्र औषधि है। रोग शमन करने वाली इस औषधि का मैं सेवन करता हूँ। रोग को रोकने के लिये सब से श्रेष्ठ औषधि यह पृश्निपर्णी पैदा हुई है। इस से बुरे नाम वाले रोगों के सिरों को पक्षी की गरदन की तरह काट डालता हूँ। हे पृश्निपर्णी! तू गर्भ को खाने वाले और जीवन को मिटा देने वाले रोग को नष्ट कर दे और उस रोग के बुरे प्रभाव को रोक जो शरीर की पुष्टि, कान्ति और लक्ष्मी का नाशक है, खून पी जाने

---

*ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे ॥
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ॥
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधेपामार्गो अजायथाः ॥
विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग्विभिन्धि त्वं तं यो अस्मां अभिदासति ॥
असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ॥
प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतिचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथां अधिवरीयो यावया वधम् ॥
शतेन मा परिपाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां यत उग्र ओजानामदधत् ॥
—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक ४, सूक्त २०, मन्त्र १ से ८ तक।

वाला और शरीर की वृद्धि को नष्ट करने वाला है। हे देवी पृश्निपर्णी ! जीवन को सन्देह में डालने वाले रोगों और पापों को पहाड़ पर भेज दे और तू इनको आग की तरह जला दे। इन जीवन के सन्देहजनक रोगों को दूर भगा दे, कच्चा मांस खाने वाले इन रोगों को अन्धकार वाले स्थानों में भेजता हूँ।❀

❀शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् ॥
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव ॥
अरापमसृग्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ॥
गिरिमेनां आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ॥
पराच एनान् प्रणुद् कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगयम् ॥
—अथर्व, काण्ड २, अनुवाक ४, सूक्त २५, मन्त्र १ से ५ तक।

भारतीय औषधिविज्ञान का इतिहास।

लेखक—श्रीयुत रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार।

गताङ्क से आगे (२)

आयुर्वेदिक साहित्य में पाठा अर्श, अतिसार आदि रोगों के लिये प्रयुक्त होता है पर यहां अन्य औषधियों की तरह इसकी स्तुति भी एक सूक्त द्वारा की गई है, यथा—सूअरों ने थूथनी से इसे खोद फेंका था और पहले पहल गरुड़ ने इसकी उपयोगिता मालूम की थी। यह शत्रुओं और शरीर का क्षय करने वाले रोगों को दूर करने वाला समझा जाता था। असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिये इन्द्र ने इसे खाया था और बाहु में इसे बांधा था।*

सिलाची नाम की एक बूटी का वर्णन इस प्रकार है—"रात तेरी माता है, नभ पिता और यम दादा है। तेरा नाम सिलाची है और तू देवों की मित्र है। जो तुझे पीता है उस पुरुष को तू बचा लेती है। युवा होती हुई कन्या की तरह तू वृक्षों पर बहुत जल्दी जल्दी उग आती है। तेरा नाम स्परणी भी है।

* नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहयानाभिभूरसि।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे॥
सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्न सा।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे॥
इन्द्रो ह चक्रे त्वा वाहावसुरेभ्यस्तरीतवे।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे॥
पाठामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्यस्तरीतवे।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे॥
तयाहं शत्रून् साक्ष इन्द्रः सालावृकां इव।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे॥
रुद्रजलाषभेषजनीलशिखण्ड कर्मकृत्।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे॥
तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि यामुत्तरं कृधि॥
—अथर्व, काण्ड २, अनुवाक ५, सूक्त २७, मन्त्र १ से ७ तक।

निम्नलिखित उदाहरणों में औषधियों के प्रयोजन की ओर तो संकेत मिलता है पर औषधियों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया ।

किसी वाजीकरण औषधि को सम्बोधन करता हुआ एक ऋषि कहता है—"हे औषधि ! नष्टवीर्य वरुण में फिर से वीर्य उत्पन्न करने के लिये तुझे पहले गन्धर्व ने खोदा था । मैं तुझ शेप-हर्षिणी को खोदता हूँ । हे वीर्य की कामना वाले पुरुष ! सन्तान की प्राप्ति के निमित्त तेरी अभि-तृप्त पुंस्त्वशक्ति जिस तरह चेष्टा करती है उसी तरह यह औषधि तेरी पुंस्त्वशक्ति को बहुत अधिक वीर्यवान् कर दे । अन्य औषधियों में यह औषधि वीर्य रूप है, सेचनसमर्थ वीर्यवान् औषधियों का यह सार है, इस पुरुष को यह वीर्ययुक्त करे । हे इन्द्र ! पुंस्त्वशक्ति देने वाली औषधियों में जो बृंहण शक्ति है वह इस पुरुष के शरीर में धारण कराओ । हे औषधि ! समुद्र-मथन में सबसे पूर्व उत्पन्न तू अमृत रूपी रस है, वनस्पतियों का तू सार है, औषधियों का अधिपति सोम तेरा भाई है और ऋषियों की बृंहण शक्ति तू है । हे औषधि ! घोड़े, खच्चर, बकरे, मेढ़े और सांड़ जैसी वीर्यसामर्थ्य इस वीर्य चाहने वाले के शरीर में दे, इसका शरीर अपने वश में रहे ।⊛

औषधियों का गर्भ पर प्रभाव उस समय के लोग जानते थे । पुंसवन कर्म में वे इस आशय का एक मन्त्र बोलते थे—"जिन औषधियों का द्युलोक पिता है, पृथिवी माता है और समुद्र मूल कारण है वे दिव्य गुण वाली औषधियां पुत्रप्राप्ति के लिये तेरी रक्षा करें ।"×

⊛ यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥
यथा स्म ते विरोहतोभितप्तमिवानति ।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥
अपां रसः प्रथमजोथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजस्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥
—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक १, सूक्त ४, मन्त्र १, ३, ४, ५, और ८ ।

× यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ॥
अथर्व, काण्ड ३, अनुवाक ५, सूक्त २३, मन्त्र ६ ।

कन्या का मन वश में करने के लिए भी औषधियों से प्रार्थना वेद में मिलती है। ⊛ एक मन्त्र में सूर्य और औषधि दोनों से कन्या के लिए पतिप्राप्ति की प्रार्थना की गई है। ×

निम्नलिखित मन्त्रों में मालूम होता है अतिसार प्रवाहिका आदि रोगों की किसी औषधि का वर्णन है—"पर्वत पर उगने वाली, दूर तक फैल जाने वाली, रोगरोधक और व्याधि—निवारण में बहुत अधिक उपयोगी औषधि से मैं तेरा इलाज करता हूँ। प्रयोग करने के साथ ही हे औषधि! तू रोग को दूर कर दे, तू सैकड़ों औषधियों में सब से अच्छी है, चुआने वाले रोगों और सब रोगों को तू दूर कर देती है। इस बड़े घाव को कृमियों ने बहुत गहराई तक खोद डाला है, इस की शामक औषधि! इस रोग को अच्छा कर दे।" ÷

निम्नलिखित उदाहरणों में औषधि का नाम तथा उस के कार्य से अच्छे हो जाने वाले रोगों के नाम दोनों की ओर निर्देश मिलता है।

"हे रोहिणी! (लाल वर्ण लाख या मांस-रोहिणी) तू घावों को भर देने वाली है इस लिए तू तलवार आदि शस्त्र से कटे हुए अङ्ग से बहते हुए खून को बन्द कर दे। हे अनेकों से अनुभूत औषधि! इस घाव को भर दे, टूटी हुई हड्डियों को जोड़ दे। हे शस्त्रों से आहत! शरीर के तेरे जिस प्रिय अङ्ग पर चोट आई है या जो जल गया है उसको धाता (सर्जन ?) इस भली औषधि से जोड़ दे और जोड़ को जोड़ से ठीक मिला दे।" औषधि का लेप करके सर्जन रोगी को सान्त्वना देने के लिये फिर मन्त्र पढ़ता है—"तेरा खिसका हुआ जोड़ अपने ठीक स्थान पर बैठ जाय, टूटी हुई हड्डी ठीक जुड़ जाय, कट कर अलग हुआ मांस फिर उत्पन्न हो जाय।" औषधि से कहता है—"हे औषधि! तू बालों को अपने ठीक स्थान

⊛ कन्यानां विश्वरूपाणां मनोगृभायौषधे ॥

—अथर्व, काण्ड २, अनुवाक ५, सूक्त ३०, मन्त्र ४।

× आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः पतिकाम्यः। त्वमस्मै धेह्योषधे ॥

—अथर्व, काण्ड २, अनुवाक ६, सूक्त ३६, मन्त्र ८।

÷ अदो यदवधावत्यवत्क्रमधि पर्वतात्।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथा सति ॥
आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् ॥
नीचैः खनन्त्यसुरा अंरुस्राणमिदं महत्।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ॥

—अथर्व, काण्ड ३, अनुवाक १, सूक्त २, मन्त्र १ से ३ तक।

पर उगा दे, फटी हुई त्वचा के साथ ही नई त्वचा बना दे, टूटी हुई हड्डी के स्थान पर रक्त का प्रवाह न रुके, इसका जो कोई भी अङ्ग चोट खा गया है उसे चङ्गा कर दे।" ⊛

हल्दी आदि से वर्णसादृश्य करने के सम्बन्ध में एक सूक्त है यथा—" हे भृङ्गराज, इन्द्रवारुणी, नीली और हल्दी आदि औषधियो! तुम रात में पैदा हुई हो इस लिये तुम शुक्लता निवारण कर के कृष्णता ला देने में समर्थ हो, इस श्वित्र कुष्ठ वाले अङ्ग को और इन सफेद बालों को रंग दो। इस व्याधि-दूषित शरीर से किलास और पलित का समूलनाश कर दो। हे रोगी! तुझमें अपना पहले वाला रङ्ग प्रवेश कर जाय। तेरे शरीर और बालों की सफेदी दूर हो जाय। हे औषधि! तेरा उत्पत्ति-स्थान कृष्णवर्ण है। तुझे काले स्थान पर काले पात्रों में रखा जाता है, तू स्वयं काली है, इस लिये इस दूषित अङ्ग से किलास और पलित को अलग करके इनको सर्वथा नष्ट कर दे। शत्रु के अभिचार आदि कर्मों से उत्पादित किलास के सफेद धब्बों को चाहे वे त्वचा, मांस या हड्डी में अथवा कहीं भी विद्यमान हों इस मन्त्र से नष्ट कर देता हूँ।" ×

⊛ रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी रोहयेदमरुन्धति ॥
यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि।
धाता तद् भद्रया पुनः संदधत् परुषा परुः ॥
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ॥
सं ते मज्जा मज्ज्या भवतु समु ते परुषा परुः।
लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा संकल्पया त्वचम् ॥
असृक् ते अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे।
—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक ३, सूक्त १२, मन्त्र १, २, ३, ५,

× नक्तं जातस्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय।
असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य यत् त्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥
—अथर्व, काण्ड १, अनुवाक ५, सूक्त २३।

सरकण्डे का हम आयुर्वेद में मूत्रल रूप में अन्तःप्रयोग करते हैं, वेद में भी इसका यही प्रयोजन मिलता है। मालूम होता है जब पथरी से मूत्र अवरोध हो जाता होगा तो उस समय के लोग सरकण्डे को मूत्र-मार्ग में प्रविष्ट करते होंगे जिससे रास्ते में से पथरी हट कर एक पार्श्व में हो जाय और मूत्र खुल कर आवे। मूत्रमार्गावरोध (Sticture) आदि सर्जिकल अवस्थाओं में लोह-शलाका (Metal Sound) की जगह सरकण्डे का प्रयोग होता था। ※

कुष्ठ को वैदिक काल के लोग ज्वर, यक्ष्मा, सिर के रोगों, श्वास के कष्टों आदि को दूर करने के लिये उपयोगी और बहुत बलकारक औषधि समझते थे। आयुर्वेदिक दृष्टि से कुष्ठ का इस रूप में प्रयोग संगत प्रतीत होता है।×

※ विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति॥
यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम्।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥
प्रते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥
—अथर्व, काण्ड १, अनुवाक १, सूक्त ४, मन्त्र ५ से ९ तक।

× यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः॥
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम्॥
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्याभितो दिवि।
तत्रामृतस्य भक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत।
हिरण्मयी नौश्चरद्धिरण्यबन्धना दिवि॥
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत॥
हिरण्मयाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्मया।
नावो हिरण्मयीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन्॥

त्वचा के श्वेतकुष्ठ आदि रोगों को अच्छा करने वाली एक बूटी श्यामा के लिये आसुरी और गरुड़ में युद्ध होता है। आसुरी की विजय होती है और उसके द्वारा पहले पहल श्वेत कुष्ठ की चिकित्सा करके त्वचा का वर्णसादृश्य ला देने का वर्णन वेद में मिलता है।※

वैदिक काल के लोग औषधियों के विषप्रभाव को जानते थे। विषैली औषधियों को खोदते हुये वे इस प्रकार मन्त्र पढ़ते थे—"हे विषैली औषधि! तुझे खोद कर निकालने वालों पर तेरा प्रभाव न हो, तेरी विषैली शक्ति कुण्ठित हो जाय, जिस पहाड़ पर यह विष उत्पन्न हुआ है वह भी विषरहित हो जाय×।"

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तया वह तं निष्कुरु ।
तमु मे अगदं कृधि ॥
देवेभ्यो अधि जातासि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥
उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥
उत्तमो नाम कुष्ठस्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं भारसं कृधि ।
शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो रयः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥

—अथर्व, काण्ड ५, अनुवाक १, सूक्त ४ ।

※ सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तम् आसिथ ।
तद् आसुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजम् इदं किलासनाशनम् ।
अनीनशत् किलासं सरूपाम् अकरत् त्वचम् ॥
सरूपा नाम ते माता सरूपा नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्धृता ।
इदमू पु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥

—अथर्व, काण्ड १, अनुवाक ५, सूक्त २४, मन्त्र १ से ४ तक ।

× बध्नयस्ते खनितारो बध्निस्त्वमस्योषधे ।
बध्निः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ॥

—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक २, सूक्त ६ ।

"हे उन्मत्त कर देने वाली औषधि! तेरे मूर्छा ला देने वाले विषैले असर को धनुष से छोड़े हुए बाण की तरह शरीर से परे फेंक देता हूँ। अङ्ग प्रत्यङ्ग में व्याप्त होते हुए विष को मन्त्र से निकाल कर दूसरी जगह रख देता हूँ।" "विक्षुब्ध जनसमूह की तरह प्रबल विष को मन्त्र से खींच कर दूसरी जगह रख देता हूँ। कुदाल से खोदी हुई हे औषधि! वृक्ष की तरह तू अपने स्थान पर निश्चल हो जा, इस पुरुष को मोहित मत कर।"❀

वरणावती नदी का पानी विषप्रतिकार के लिए अच्छा समझा जाता था। विषग्रस्त रोगी को यह पानी देते हुए वैद्य इस प्रकार मन्त्र पढ़ता था—"इस नदी के आस पास वरुणा वृक्ष बहुत उगे हुए हैं, इस लिए इसका पानी तेरे विष को दूर करे। इस वरणावती नदी में द्युलोक का विष-नाशक गुण डाल दिया गया है इसलिए इस अमृतमय जल से तेरा विष दूर हो जाय।"×

ऊपर के अनेक उदाहरणों में पाठकों ने देखा होगा कि वेद में आई हुई अधिकांश औषधियों से शत्रुओं को मारने की प्रार्थनाएं की गई हैं। हिन्दुओं के प्रसिद्ध पवित्र वृक्ष पीपल तथा खैर से भी ऐसी प्रार्थनाएं मिलती हैं।÷ निम्नलिखित उदाहरणों में भी शत्रुओं को परास्त करने और शापों को

❀ वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि।
प्रत्वा मरुमिव पेषन्तं वचसा स्थापयामसि॥
परिश्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि।
तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिरवाते न रूरुपः॥

—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक २, सूक्त ७, मन्त्र ४ और ५।

× वारिदं वारयातै वरुणावत्यामधि।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम्॥

—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक २, सूक्त ७ मन्त्र १।

÷ पुमान् पुंसः परिजातोश्वत्थः खदिरादधि।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम्॥
तानश्वत्थः निः शृणीहि शत्रून् वैवाधदोधतः।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च॥
यथाश्वत्थ निरभनोन्तर्महत्यर्णवे।
एवा तान्सर्वान्निर्भङ्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम्॥
यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्सहिषीमहि॥
सिनात्वेनान् निर्ऋतिमृत्योः पाशैरमोघैः।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम्॥

नाश करने के लिए औषधियों का प्रयोग किया गया है, यथा - "सब दवाइयों से अधिक ऐश्वर्य-शाली तुझ औषधि को विजय प्राप्त करने के लिए मैं छूता हूँ। तू सब औषधियों से हजार गुनी अधिक सामर्थ्य वाली बनाई गई है। सचमुच विजय प्राप्त कराने वाली, दूसरे को दिये गये शाप को नाश करने वाली, शत्रु को जीतने वाली, बारबार काम में आने वाली औषधि तू तथा अन्य औषधियां हमें पार लगा दें।" ※

"हे हजारों स्थानों पर उगाने वाली औषधि ! तू हमारे शत्रुओं के बालों को नोच ले और उनकी गरदनों को काट कर उनका नाश कर दे। शत्रुओं के लिए प्रिय पर हमारे लिए घातक कार्यों को तू दूर कर दे। इस औषधि से मैं सब कार्यों को सिद्ध कर लूंगा। जमीन में, वायु में, गौओं में, मनुष्यों में जहाँ कहीं भी शत्रु ने हमारे लिए बुराई पैदा की है उसे मैं दूर करता हूँ।"×

"पापों का नाश करने वाली, देवों के लिए उत्पन्न, ब्राह्मण आदिकों के शापों को दूर करने वाली औषधि तू मेरे सब शापों को इस तरह धो डाल जिस तरह पानी गन्दगी को धो डालता है।"÷

यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च ॥
तेऽधराञ्चं प्रप्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वै बन्धप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥
प्रैणान् नुदे मनसा प्रचित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ॥
—अथर्व, काण्ड ३, अनुवाक २, सूक्त ६ ।

※ ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेय आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा ॥
सत्याजितं शपथयाविनीं सहमानां पुनः सराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधीरितो नः पारयादिति ॥
— अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक ४, सूक्त १७, मन्त्र १ और २ ।

× सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवां छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदषम् ।
या क्षेत्रे चक्रुर्या गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥
—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक ४, सूक्त १८, मन्त्र ४ और ५ ।

÷ अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी ।
आपोमलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथां अधि ॥
—अथर्व, काण्ड २, अनुवाक २, सूक्त ७, मन्त्र १ ।

कई पौदों के सम्बन्ध में ये प्रार्थनायें बहुत अद्भुत तथा अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और जादू का सा रूप धारण कर लेती हैं। पत्नी को वश में करने के लिये एक बूटी का जादू देखिये—"इन लताओं में सबसे अधिक प्रबल औषधि को उखाड़ता हूँ, यह औषधि पत्नी को वश में रखती है और इससे पत्नी को उत्तम पति प्राप्त होता है। हे पत्तों के ऊपर मुख वाली, सौभाग्य देने वाली, रोगों का पराभव करने वाली, देवों से प्रेरित औषधि ! तुझसे पति स्त्री को सन्तुष्ट कर सके, पति को असाधारण सामर्थ्य प्राप्त हो। हे औषधि ! तेरी कृपा से मैं पत्नी को अपने वश में करता हूँ और तू भी शत्रुओं का पराभव करने वाली है, तेरी सहायता से पत्नी को अपने वश में करता हूँ। वश में करने वाली इस औषधि को पत्नी की शय्या के नीचे और ऊपर रखता हूँ। हे औषधि ! तेरे प्रभाव से वश में हुआ मन मेरे अनुसार चले। जिस प्रकार गौ प्रेमवश बछड़े के पीछे दौड़ती है और पानी ढालू रास्ते पर तेजी से बहता है उसी प्रकार तेरे प्रभाव से पत्नी का मन वश में होकर मेरे अनुकूल चले*।"

बालों को बढ़ाने और गञ्जे सिर पर बाल उगाने के लिये एक बूटी के सम्बन्ध में बहुत अद्भुत वर्णन मिलता है यथा—"बालों को बढ़ाने वाली जिस औषधि को जमदग्नी ने अपनी दुहिता के लिये उखाड़ा था उसे वीतहव्य असित के घर से लाया था। हे देवी औषधे ! बालों को मज़बूत करने के लिये तुझे दिव्य पृथिवी पर से उखाड़ता हूँ। बालिश्त से नापे जाने वाले बाल इस औषधि के प्रभाव से नरसल की तरह लम्बे और काले होकर सिर पर बढ़ें। तेरे गिरे हुये, टूटे हुये जड़ों वाले और सब बालों पर मैं सर्वरोगनाशक औषधि छिड़कता हूँ। इनकी जड़ों को मजबूत कर दे, इनके सिरों को बाहर निकाल दे, बीच से भी इनको विस्तृत कर दे। ओ वनस्पति ! इसके बाल सरकण्डों की तरह लम्बे हो जायें, इसके सिर पर बाल काले काले गुच्छों में बढ़ें।"

गाने का पेशा करने वाले गन्धर्व, मालूम होता है, उस समय अच्छी नजर से नहीं देखे जाते थे। एक तेज गन्ध वाली औषधि अजश्रृङ्गि से जहाँ पिशाच और राक्षसों को मारने की

---

*इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम्।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम्॥
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति।
सपत्नीं मे पराणुद पतिं मे केवलं कृधि॥
अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वति भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै॥
अभि तेधां सहमानामुप तेधां सहीयसीम्।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु॥
—अथर्व, काण्ड ३, अनुवाक ४, सूक्त १८, मन्त्र १, २, ५, और ६।

प्रार्थनाएं हैं वहाँ उससे गन्धर्व और उनकी पत्नियों को भी भगाने की प्रार्थनाएँ हैं। गन्धर्वों का बस्ती में रहना पसन्द नहीं किया जाता था इसलिये अजशृङ्गि से प्रार्थना की गई है कि इनकी पत्नियों को दूर नदी के पास एकान्त निर्जन स्थान में जहाँ पीपल, बड़, अर्जुन तथा इक्के दुक्के शिखण्डी या बड़े बड़े वृक्ष उगे होते हैं, वहाँ भेज दे। मन्त्र इस प्रकार हैं—"हे औषधि! तेरे द्वारा पहले महर्षियों ने राक्षसों को मारा था, तेरे द्वारा ही कश्यप, कण्व और अगस्त्य ऋषियों ने राक्षसों को मारा था। हे अजशृङ्गि! तेरे द्वारा हम अप्सराओं और गन्धर्वों का नाश करते हैं, तेरी गन्ध से सब राक्षस दूर भाग जायें। गन्धर्वों की स्त्रियाँ अप्सराएँ गुल्गुलु (गुग्गुलु?) पीला, नलदी, औक्षगन्धि, प्रमन्दनी, होम द्रव्यों के हवन से डर कर नदी पर चली जायें। जहाँ पीपल बड़, या दूसरे बड़े वृक्ष और शिखण्डि वृक्ष होते हैं वहाँ अप्सर चले जायें। औषधियों और लताओं में यह अजशृङ्गि बहुत अधिक सामर्थ्ययुक्त उत्पन्न हुई है। हमारी हिंसा करने वालों को भगा देने वाली, सींग की सी शक्ल वाले और तेज गन्ध वाले इसके फल राक्षसों और पिशाचों को नष्ट कर दें*।

वैदिक काल में वनस्पतियों के पत्तों को ताबीज के रूप में बांधे जाने की प्रथा प्रचलित थी। इन ताबीजों में ये लोग समस्त औषधियों का सार और देवताओं का ओज समाहित समझते थे।

---

* त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः॥
त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातपामहे।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय॥
नदीं यन्त्वप्सरसोपां तारमवश्वसम्।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौक्षगन्धिः प्रमन्दनी॥
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्ध अभूतन।
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः॥
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन।
यत्र वः प्रेंखा हरिता अर्जुना उत पन्नाधाराः कर्कर्यः संवदन्ति।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन॥
एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती।
अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु॥
अवाकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान्।
पिशाचान् सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च॥
—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक ८, सूक्त ३७, मन्त्र १ से ६ तक और १०।

उनके पहिनने से वे समझते थे कि उनमें भी देवताओं और वनस्पतियों का तेज आजायगा, वे बलवान् और ऐश्वर्यवान् हो जायेंगे, शत्रुओं का दमन कर सकेंगे और राष्ट्र को अपने वश में कर सकेंगे। उनका विश्वास था कि पत्तों के ये ताबीज अपशकुनों से उनकी रक्षा करते हैं। इन पत्तों के बल पर जब वे शत्रुओं को परास्त कर लेते थे तो छोटे छोटे राजा, उनके मन्त्री, उनकी सेना के सारथी तथा उन प्रदेशों के कुशल बढ़ई, लुहार आदि का काम करने वाले और मछुये सब उनकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे*।

वैदिक काल में बूटियों का क्रय-विक्रय भी होता था। कुष्ठ हिमालय में बहुत ऊंचे और दुर्गम स्थलों पर उगने से सर्वसामान्य को कठिनता से प्राप्त होता था, इस लिए उस समय भी यह बहुत मंहगा बिकता था (अथर्व, काण्ड ५, अनुवाक १, सूक्त ४)। झाडू के तिनकों और खालों के परिवर्तन में खरीदी हुई एक विषैली बूटी को रोगी को देता हुआ वैद्य कहता है—

"हे विषैली औषधि! तुझे ऋषियों ने झाडुओं के तिनकों को बेचकर खरीदा था, और खालों के बदले में खरीदा था। हे औषधि! तुझे अच्छी कीमत पर खरीदा गया है तू मेरे रोगी पर बुरा असर मत करना×।"

---

* आपमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणान्त्सपत्नान्।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन्॥
मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम्।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः॥
यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम्।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु मर्तवे॥
सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः।
ते प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥
आ मारुक्षत पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः॥
ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्॥
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्॥
पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे॥
—अथर्व, काण्ड ३, अनुवाक २, सूक्त ६।

× यवस्तेस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत।
प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रूरुपः॥
—अथर्व, काण्ड ४, अनुवाक २, सूक्त, मन्त्र ६।

वैदिक काल में धातुओं के चिकित्सागुणों का ज्ञान नहीं था। उन लोगों में सोना, चांदी आदि धातुओं के बांधने से रोग से छुटकारा पाने के विश्वास प्रचलित थे, परन्तु औषधि के रूप में इनके अन्तःप्रयोग से वे अपरिचित थे। इस काल में भी युद्ध में सेना के अधिकारियों के साथ शल्य-वैद्य रहते थे। भग्न शाखाओं का छेदन और अस्थियों का सन्धान करना, बाणों के टूटे हुए टुकड़ों को अंगों से बाहर निकालना इनका कार्य होता था। ऋक् काल में अश्विनीकुमारों ने टूटी हुई टांगों का छेदन किया था और फूटी हुई आँखें शल्यकर्म से निकाली थीं।*

रोगों की उत्पत्ति में कृमि भी कारण समझे जाते थे। अलगण्डू और शलून नामक दो प्रकार के कृमियों का अथर्ववेद में वर्णन आता है। चरक और सुश्रुत में इन दोनों का उल्लेख नहीं मिलता।×

---

* सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हितासर्तवे प्रत्यधत्त।
अक्षीना सत्याविचत्त आधत्त दस्राभिषजाथर्वान्॥

—ऋग्वेद।

× अलगण्डून् सर्वान् शलूनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि।

—अथर्व, काण्ड २, सूक्त ३१।

भारतीय औषधिविज्ञान का इतिहास।

लेखक—श्रीयुत रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार।

पूर्व आयुर्वेदकाल (२५०० ई० पूर्व से ६०० ई० पूर्व तक)

गताङ्क से आगे (३)

पिछले लेख में हमने वैदिक काल में भारतीयों को ज्ञात वानस्पतिक औषधिज्ञान पर विचार किया था। औषधियों का सब से अधिक विस्तार से वर्णन चारों वेदों में से अथर्ववेद में मिलता है। हिन्दू-चिकित्सा पर सब से प्रसिद्ध और पुरातन ग्रन्थ चरक और सुश्रुत से भी अधिक पुरानी एक कृति आयुर्वेद का इन दोनों ग्रन्थों में अथर्ववेद के अङ्ग होने के रूप में उल्लेख है। भारतीय लोगों की मान्यता है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई और आयुर्वेद का जन्म भी ब्रह्मा से हुआ अर्थात् आयुर्वेद का मौलिक रचयिता ब्रह्मा था। ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति ने, दक्ष से देवों के वैद्य अश्विनीकुमारों ने और अश्विनीकुमारों से इन्द्र ने आयुर्वेद सीखा। इस परम्परा से प्रथम देवों में आयुर्वेद संक्रान्त हुआ। पीछे इन्द्र से भरद्वाज ने और भरद्वाज से पुनर्वसु आत्रेय ने आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की। पुनर्वसु आत्रेय के छः प्रसिद्ध शिष्य हुए और उनमें से प्रत्येक ने स्वतन्त्र पुस्तकें लिखीं। कहा जाता है कि सृष्टि के कर्त्ता साक्षात् ब्रह्मा द्वारा रचित आयुर्वेद में एक हजार अध्याय और सौ हजार श्लोक थे। बाद में मानवीय जगत् की छोटी आयुओं और छोटी बुद्धियों को ध्यान में रख कर निम्नलिखित आठ अध्यायों में इसका संक्षेप कर दिया गया—

१ शल्य—शल्यचिकित्सा।

२ शालाक्य—सिर, आँख, कान और मुख के रोग।

३ कायचिकित्सा—सामान्य रोगों की चिकित्सा।

४ भूतविद्या—खराब शक्तियों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले रोग।

५ कौमारभृत्य—शिशु तथा प्रसूति-चिकित्सा।

६ अगद—विषों का प्रतिकार।

७ रसायन—स्वास्थ्य और जीवनीशक्ति को बढ़ाने वाली औषधियाँ।

८ वाजीकरण—पुंस्त्वशक्तिवर्द्धक औषधियाँ।

सौ हजार श्लोकों वाला आयुर्वेद सम्भवतः आख्यायिका मात्र है, परन्तु आठ अङ्गों वाले

संक्षिप्त आयुर्वेद की वास्तविक सत्ता प्रतीत होती है, यद्यपि वर्तमान काल में यह उपलब्ध नहीं होता। चरक और सुश्रुत संहिताओं के संकलन के बाद सम्भवतः यह लुप्त हो गया। यद्यपि सामान्यतया समझा यही जाता है कि आयुर्वेद का विस्तार अथर्ववेद से हुआ, परन्तु हम आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष के सिद्धान्त को ऋग्वेद के काल में भी खोज सकते हैं—(९, १११,२; ८, ४७, १०; १, ३४, ५; १, ३५, ५; ८, ४०, १२)। अथर्ववेद में तो हमें इसके लिए पर्याप्त प्रमाण मिल सकते हैं कि रोग की उत्पत्ति का कारण दोषों का प्रकोप होना विश्वास किया जाता था (१,१२,३)। वातविकारों में पिप्पली का प्रयोग किया जाता था (६, १०९, ३)।

रामायण-काल।

रामायण में आयुर्वेद के आचार्य धन्वन्तरि की उत्पत्ति देवताओं से मानी गई है (१—४५—३०)। रामायण-काल में भी वैद्य होते थे (२—१०—२९)। दशरथ के राजप्रासाद में चतुर वैद्य रहते थे। एक बार राजा दशरथ ने कैकेयी से उसकी तकलीफ पूछी थी और वचन दिया था कि वे उसे अपनी सेना के चतुर चिकित्सक के पास भेज देंगे जो उसके रोग की चिकित्सा कर देगा (२—१०—२९)। बाली का श्वशुर सुषेण उच्च कोटि का बुद्धिमान् मिलिटरी सर्जन था जिसके आश्चर्य-कारक इलाज से लङ्का के युद्ध-क्षेत्र में राम, लक्ष्मण और वानर अच्छे हो गये थे। वह औषधियों की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में सब कुछ जानता था और शल्यरोगों की चिकित्सा भी जड़ी बूटियों से कर सकता था। बहुत उग्र औषधियों का नस्य रूप में प्रयोग करके वह अन्तर्धूम चिकित्सा करना भी जानता था। हिमालय में उगने वाली आश्चर्यजनक गुणकारी सब रोपक वनस्पतियों का सुषेण को ज्ञान था। रावण के प्रहार से राम और लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर सुषेण ने वानरों को बूटी लाने के लिये कहा था (६, १०२, २३, ४१)। पहाड़ों पर उगी हुई रोपक वनस्पतियों का पहाड़ों पर रहने वाले बन्दरों को ज्ञान था। तीर के घावों और तलवार के क्षतों को रोपण करने में समर्थ सञ्जीवकरणी या सञ्जीवनी, स्वाभाविक वर्ण ला देने वाली सवर्णकरणी, और टूटे तथा कटे हुये अङ्गों को जोड़ने वाली सन्धानकरणी आदि सब का वानरों को ज्ञान था और लंका के युद्ध क्षेत्र में जनरल सर्जन सुषेण को इन की जरूरत भी पड़ती थी (६, ५०, २९ आदि ६, १०२, २३-४१)। युद्ध-क्षेत्र में त्रिशिर और राक्षस जो उसके साथ थे वे घावों से बचने के लिये अपने शरीरों को अनेक प्रकार की वनस्पतियों और सुगन्धित द्रव्यों से पोत लेते थे (६, ६९, १८)। बड़े बड़े सघन जङ्गलों और पहाड़ों पर औषधियों की खोज की जाती थी (३, ६७, १४)। हिमालय जैसे पर्वतों पर से औषधियाँ लाई जाती थीं (६, ५०, २८ और ६, ७८, २८)। महेन्द्र पर्वत पर सर्प-विष-नाशक औषधियाँ उगती थीं (५, १, २१)। दशरथ की धर्मपत्नी कैकेयी को कुछ औषधियों का ज्ञान था जो युद्ध में दशरथ के साथ रहती थी। दशरथ जब अपने शत्रु शम्बर से

घायल होकर मूर्च्छित हो गया तो उसे बचाने के लिये उसने अपने ज्ञान का प्रयोग किया था (२, ६, ७६)। कैकेयी भी इस बात का दावा करती है कि उस अवसर पर उस ने अपनी बुद्धमत्ता से दशरथ के प्राण बचा लिये थे (२, १२, ४०)।

इस समय नर्स को धात्री कहा जाता था। उसका कर्त्तव्य बच्चों को खिलाना पिलाना ही नहीं था बल्कि वह शिशुओं की देख भाल भी करती थी। सगर के प्रासाद की नर्स अपरिपूर्ण बच्चों को पालने की आवश्यकता से परिचित थीं (२, ३८, १८)।

मद्य बनाना और शराब खींचना बहुत विस्तृत रूप में प्रचलित होगा क्योंकि बहुत सी शराब और पातित मद्यों (Distilled liquors) का वर्णन आता है, जैसे—

मैरेय, आसव (१, ५३, २)।

सुरा (२, ३६, १२ और ५, ११, १६)।

कृतसुरा (५, ११, १६)।

वारुणि (२, ११४, २३)।

मैरेय और मधु (४, ३३, ७)।

शीधु (५, ११, २३)।

शर्करा-आसव, मध्वीका, पुष्पासव (५, ११, १६)।

फलासव (५, ११, १६)।

कष्ट-प्रसव आदि अवस्थाओं में तेज़ औज़ारों से आपरेशन निश्चित रूप से किये जाते थे (५, २८, ६)। अक्षिगोलक को निकाल कर लगा देने का एक मनोरञ्जक वर्णन भी मिलता है (२, १२, ४३ और २, १४, ४ फ०)।

इस समय कतिपय निम्न रोग प्रचलित थे—

मानसिक क्षोभ—चित्तमोह (५, ३४, २३)।

,, ,, —वातगति (५, ३४, २३)।

उन्माद (५, ३४, २४)।

मृग-तृष्णिका-भ्रान्ति (५, ३४, २३)।

प्रकाश-असमता जैसे नेत्ररोग-नेत्रातुर (६, ११८, १७)

जलोदर—महोदर (७, ३५, ५४)।

जबड़े का टूटना—(७, ३५, ४७)।

अवरोधजन्य मलमूत्रावरोध (७, ३५, ५०)।

गर्भपात और गर्भस्राव (१, ३७, २७)।

निम्नांकित आयुर्वेद सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द रामायण-काल में प्रयुक्त होते थे—

आमय—रोग (७, ४१, १८)।

औषधि—(६, ५०, ५६ और ६, ७४, ३१)।

औषध—(३, ४०, १)।

विषघ्न औषध–(५, १, २१)।

औषधि—चिकित्सोपयोगी वनस्पतियाँ, हिमालय से लौटने पर वानरों के अन्वेषक दल ने सुग्रीव को कुछ दी थीं (४, ३७, ३१)।

अरोग–प्रसव—कष्ट–प्रसव, प्रसूतिज्वर, रक्तस्राव आदि कष्टों के बिना शिशूत्पत्ति होना (७, ४१, १६)।

आतुर—रुग्ण मनुष्य (६, ५, १३)।

भैषज्य—चिकित्सोपयोगी द्रव्य (७, ६०, १२)।

भेषज—(६, ११६, १८ और ५, ७७, १४)।

चिकित्स्यति—इलाज करता है (६, ५०, २६)।

दौहृद—आशायुक्त माता के लिए दवा (५, २४, ३८)।

पेय के प्रभाव—प्रचुर मूत्र विसर्जन के बाद हट जाता है (५, ६४, ४)।

कुब्ज—पीठ में कूबड़ निकल आना (१, ३२, २५)।

महौषधि—अत्यन्त गुणकारी औषधियाँ (६, ५०, २८)।

मृतसञ्जीवनी—मरे हुये को जिला देने वाली औषधि (६, ७४, ३२)।

पथ्य—रोगों में खान पान (३, ४०, २६)।

रसायन—बलदायक औषधि (६, ५, १३)।

रोग—बीमारी (६, २२, ४०)।

सन्धानकरणी—टूटे हुये और कटे हुये अङ्गों को जोड़ देने वाली औषधि (६, ७४, ३२)

विशल्यकरणी—बाणों और वेदना को निकाल देने वाली औषधि (६, ७४, ३२)।

वैद्य—चिकित्सक (२, १०, २६)।

व्याधित—पुरातन रोगी।

शरीर के विभिन्न सामान्य अङ्गों के अतिरिक्त शरीररचनाशास्त्र सम्बन्धी निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों (एनाटामिकल टर्म्स) का वे लोग प्रयोग करने लग गये थे—

यकृत्—
प्लीहा— (६, ५८, २६)।
अन्त्र—

विण्मूत्राशय—गुदा और मूत्राशय (७, ३५, ५०)।

गर्भ—(५, २८, ६)।

वपा—(१, १४, ३६) ।

बन्धन—स्नायु या मांस पेशियां या सन्धियां (५, २४, ३६) ।

क्लोम—(५, २४, ३६) ।

जत्रु—हंसली, (१, १, १०) ।

मृत देह को सुरक्षित रखना वे जानते थे । सड़ांद से बचाने के लिए भरत के आगमन तक दशरथ का शव तेल में रखा गया था (२, ६६, १४) । ब्राह्मण उपदेशक के मृत बालक को मसालों और गन्ध द्रव्यों के साथ तैल के पात्र में सुरक्षित रखने के लिये राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया था (७, ७५, २ आदि) । बलिदान को पूर्ण करने के लिये राजा निमि का शरीर कहते हैं कि सुगन्धित द्रव्यों और कपड़े से सुरक्षित कर दिया गया था । स्पष्ट प्रतीत होता है कि मिश्र-निवासियों के मुरदों को सुरक्षित रखने के तरीकों जैसी ही कुछ विधियाँ उन दिनों भारतवर्ष में भी उपयोग में थीं (७, ५७, ११) ।

पशु-चिकित्सा की एक विज्ञान के रूप में सत्ता एक प्रसंग से (७, १०, १८) निश्चित रूप से मालूम होती है जहाँ विभीषण ने कहा था कि उसके रोगी गधे, खच्चर और ऊँटों को चिकित्सा से भी कोई लाभ नजर नहीं आ रहा (६, १०, १८) ।

आयुर्वेद में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों को हम पाणिनि के सूत्रों में भी उसी रूप में पाते हैं । रोगों के नामों को प्रकट करने वाले शब्द (३, ३, २०८), पामा (५, २, १००) सिध्म, विचर्चिका, मूर्च्छा (५, २, ६७), अर्श (५, २, १२७) आदि शब्द पाणिनि के समय में भी प्रयुक्त होते थे । आयुर्वेद (४, ४, १०२) और बच्चों की बीमारियों को प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ (४, ६, ८८) भी मौजूद थे । वात, पित्त (५, २, २४) और कफ (५, २, १००) का उस समय ज्ञान था । रोगों का इलाज (५, ४, ६४), रोगों का अवधिकाल और रोगों के कारणों को (५, २, ८१) उस समय के लोग जानते थे ।

कात्यायनि के वार्तिकों में, जिसका काल चौथी से तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व माना जाता है, वात पित्त और कफ तीनों दोषों की श्रृङ्खला मिलती है (५, १, ३८ सूत्र पर वार्तिक—"वात-पित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्") ।

विनयपिटक महावग्ग के भेसज्ज क्खन्धक (भैषज्य-स्कन्धक) में आयुर्वेद का बहुत उत्तम वर्णन है । यह ईस्वी पूर्व ३६० से ३७० की कृति है ।

यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि जीवन की विद्या भारत में बहुत प्राचीन काल से और बहुत समय तक प्रचलित रही है । कुछ पश्चिमीय विद्वानों ने आयुर्वेद का काल लगभग २५०० ईस्वी पूर्व से ६०० ईस्वी पूर्व तक निश्चित किया है । परन्तु जैसा कि हमने पहले कहा है केवल इसी विषय को प्रतिपादन करने वाला इसी नाम का कोई तात्कालीन ग्रन्थ वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं होता । (असमाप्त)

भारतीय औषधिविज्ञान का इतिहास।

लेखक—श्रीयुत रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार।

मौलिक अन्वेषण और प्रामाणिक लेखकों का काल।

(छठी शताब्दी ई० पूर्व से छठी शताब्दी ई० पश्चात् तक)

(४)

इस काल के दो महान् ग्रन्थ चरक और सुश्रुत हैं। इन में हम इस विषय का वर्णन स्पष्ट रूप से उन्नत पाते हैं। वैदिक काल की अव्यवस्थित अवस्था से अब इस विषय का अध्ययन बहुत अधिक विकसित हो गया था। चरक और सुश्रुत में आयुर्वेद के आठ अङ्गों का विशद वर्णन है। दोनों ग्रन्थों में चरक कहीं अधिक प्राचीन है। चरक और अथर्ववेद की आयु में अवश्य एक विशाल अन्तर होना चाहिये और यह अन्तर सम्भवतः हजार या अधिक वर्षों का होगा। चरक क्योंकि सुश्रुत से पुराना है इसलिये आजकल चिकित्सा पर उपलब्ध संस्कृत रचनाओं में सब से पुराना है। इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि एक विद्वान् और प्रतिभाशाली ऋषि पुनर्वसु आत्रेय ने छः शिष्यों, अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणी को पवित्र आयुर्वेद की शिक्षा दी। अग्निवेश ने सर्वप्रथम चिकित्सा पर एक ग्रन्थ लिखा और बाद में भेल तथा दूसरों ने उसका अनुकरण किया और प्रत्येक ने एक पृथक् संहिता बनाई जिससे उन्हों ने बहुत ख्याति प्राप्त की। अग्निवेश की संहिता सर्वोत्तम समझी गई। चरक ने इसका सम्पादन या संशोधन किया और अब उसी के नाम से यह प्रसिद्ध है। इस संहिता के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर लिखा है कि यह ग्रन्थ अग्निवेश ने सङ्कलित किया और चरक ने संशोधित किया। इस से पीछे का एक लेखक वाग्भट अपनी कृति 'अष्टाङ्गहृदय' की भूमिका में लिखता है कि अग्निवेश, हारीत, भेल, सुश्रुत और कवल आदिकों के एक ग्रन्थ से उस ने यह निर्माण किया। इस से मालूम होता है कि चरक में प्रतिपादित आत्रेय के ६ शिष्य काल्पनिक (Mythical) व्यक्ति नहीं थे और उसके समय तक उनकी रचनायें विद्यमान थीं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि वाग्भट के जीवनकाल में अग्निवेश की कृति चरक नाम से नहीं प्रसिद्ध हुई थी और सुश्रुत लिखा जा चुका था। इस लिये यह परिणाम निकलता है कि अग्निवेश की रचना का चरक नाम

से नवीन संस्करण निकलने से पूर्व सुश्रुत लिखा जा चुका था और सुश्रुत–निर्माण के बाद चरक ने इसका प्रतिसंस्कार करके चरक नाम रखा।

चरक के जन्म–स्थान के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु चरकसंहिता में कुछ अध्याय जोड़ने वाला दृढबल अपना जन्मस्थान पञ्चनद या पञ्जाब बताता है।

यह ध्यान देने की बात है कि चरकसंहिता का निर्माण प्राचीन शैली पर हुआ है और मालूम होता है कि पौराणिक काल के हिन्दुत्व के प्रसार से पूर्व यह लिखा गया था क्योंकि आधुनिक देवी देवताओं के नाम इसमें नहीं उपलब्ध होते और लेखक किसी पौराणिक देव (Mytholgoical deity) को नमस्कार कर के ग्रन्थ प्रारम्भ नहीं करता जैसा कि पिछले लेखकों में पाया जाता है। चरक की आयु के सम्बन्ध में विद्वानों के बहुत अधिक भिन्न मत हैं। फिर भी खयाल किया जाता है कि यह ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी के पीछे नहीं लिखा गया होगा। कुछ विद्वानों की सम्मति में यह पूर्व बौद्धकालिक ग्रन्थ है।

चरक में चिकित्सोपयोगी औषधियों का अधिक सुव्यवस्थित उल्लेख है। उद्भिज्जों अर्थात् वनस्पतियों का चार मुख्य भागों में श्रेणीकरण किया गया है, जैसे—वनस्पति, वृक्ष, वीरुध और औषधि। जिन पौदों में पहले प्रकट रूप में फूल नहीं आते और फल नज़र आते हैं उन्हें वनस्पति कहा जाता है। जिन पौदों पर फूल आकर फल लगते हैं, फूल और फल दोनों होते हैं, और जिन के तनों से छोटी छोटी शाखायें निकलती हैं उन्हें वृक्ष कहते हैं। वृद्धि–काल में दूसरों के आश्रय की अपेक्षा रखने वाले पौदों को वीरुध् या वल्ली कहा जाता है। घास तथा अन्य पौदे जो फल पकने के बाद शेष हो जाते हैं औषधि कहलाते हैं। उद्भिज्जों के सब भाग चिकित्सा में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यथा—

मूल, जैसे चित्रक की।

अधोभूमिकाण्ड (Underground stem), जैसे सूरण (Amorphophallus Campanulotus) का।

पत्र, जैसे बांसे के।

फल, जैसे त्रिफला।

फूल, जैसे धातकी।

सत्व (एक्स्ट्रैक्ट), जैसे कत्था, अफीम आदि।

त्वक्, जैसे कुटज।

काष्ठ, जैसे दारुहल्दी।

निर्यास, जैसे हींग, गूगल आदि।

कभी कभी सम्पूर्ण पौदा उपयोग में लिया जा सकता है, जैसे कण्टकारी।

चरक के सिद्धि-स्थान के छठे अध्याय में केवल विरेचक और वामक औषधियों पर विचार किया गया है। सूत्र स्थान के चौथे अध्याय में छः सौ विरेचन योग दिये गये हैं। इसी अध्याय में प्राचीन हिन्दुओं को ज्ञात चिकित्सोपयोगी वानस्पतिक ज्ञान का बहुत उत्तम वर्णन पाया जाता है। शरीर के भिन्न भिन्न अंगों, संस्थानों या रोग के विशेष लक्षणों पर औषधि के कार्य के अनुसार ग्रन्थकार ने औषधियों का पचास वर्गों में श्रेणीकरण किया है।

औषधियों के सेवन करने के तरीके पूर्णतया वर्णन किये गये हैं जो वर्तमान समय में प्रयुक्त तरीकों से बहुत अधिक मेल खाते हैं, यहां तक कि विभिन्न रोगग्रस्त अवस्थाओं के लिये दवाओं का सूचीवेध रूप में प्रयोग ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहता। प्रतीत होता है कि विद्वान् लेखक औषधि के सीधे रक्त में मिल कर शीघ्र प्रभाव करने के गुण से अपरिचित नहीं थे। सर्पदष्ट व्यक्ति जब मरणासन्न होता था और मृतप्राय व्यक्ति की तरह श्वास ले रहा होता था तो उसके मस्तक पर कौए के पैर जैसा त्रिरेखाकृति क्षत बना कर उसमें औषधि रख दी जाती थी। फन वाले सांपों के विष का बहुत अधिक विषैला असर हो गया हो और आक्रान्त मनुष्य अचेतन हो गया हो तो सुश्रुत सिर पर काकपदाकार क्षत करके सरक्त मांस रखता था। सम्भवतः वह समझता हो कि शरीर में विद्यमान खून का ज़हर रखे हुए मांस और खून में संक्रमण कर जायगा और रोगी अच्छा हो जायगा। ऐसी अवस्था में चरक भी इस चिकित्सा विधि का आश्रय लेता था।

ग्राह्य उत्तम औषधियां, चिकित्सोपयोगी भाग, उन का संग्रह, इकट्ठा करने का समय, सुरक्षित रखना आदि प्रत्येक सामान्य समझे जाने वाले परन्तु महत्वपूर्ण विषय पर बहुत विस्तृत और सूक्ष्म विचार किया गया है। चूर्ण, स्वरस, जल या क्षीरसिक्त कषाय व फाण्ट, रसक्रिया, पानक, आसव, अरिष्ट, सिरका, कांजी, अवलेह, मोदक, वटी, पुटपाक, तिर्यक्पातन, सिद्ध तैल व घृत, लेप आदि की शक्ल में औषधियों को तय्यार करने की बहुत उत्तम और विस्तृत विधियां लिखी हैं।

काल की दृष्टि से चरक के बाद का ग्रन्थ सुश्रुत है। इसमें शरीररचना (एनाटोमी) और शरीर-विकृति-विज्ञान (पैथोलोजी) का अधिक उत्तम विस्तार है और शल्यतन्त्र का विशद वर्णन है। सुश्रुत की भूमिका में इस के निर्माण के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है-बुढ़ापा, क्षयरोग और मृत्यु से बचे रहने के लिये देवताओं ने शल्य कर्म और चिकित्सा की जिन अन्य शाखाओं का ज्ञान प्राप्त किया था उस की शिक्षा देने के लिये स्वर्ग का शल्य-चिकित्सक(सर्जन) धन्वन्तरि मनुष्य रूप धारण कर के बनारस के राजा देवदास के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुआ। सुश्रुत और दूसरे शिष्यों ने उसे शल्यकर्म की शिक्षा देने के लिए कहा। "आप क्या सीखना चाहते हैं" इस प्रकार धन्वन्तरि के पूछने पर शिष्यों ने उत्तर दिया कि आप अपनी शिक्षा के आधार शल्यकर्म का ज्ञान सुश्रुत को उपदेश कर दें, वह उसे लिख लेगा। धन्वन्तरि ने कहा कि ऐसा ही सही। शल्यकर्म

आयुर्वेद का सर्वप्रथम और महत्वपूर्ण भाग समझा जाता है। देवताओं को चिकित्साविज्ञान की सब से प्रथम आवश्यकता राक्षसों के साथ युद्ध में हुए घावों को अच्छा करने के लिये ही हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है।

सुश्रुत के अधिक भाग में शरीररचना, शल्यकर्म सम्बन्धी यन्त्र और शल्यकर्म (आपरेशन्स), शोथ और शल्य रोगों, राजा की और युद्ध में उसकी सेना की रक्षा, प्रसूतितन्त्र सम्बन्धी आपरेशन्स और विष आदि का वर्णन है। ज्वर, अतिसार, छाती के रोग आदि सामान्य रोगों पर अन्तिम भाग उत्तरतन्त्र में विचार किया गया है। विश्वास किया जाता है कि यह भाग मूल रूप में ग्रन्थ का हिस्सा नहीं है परन्तु ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान करने के लिये बाद में किसी लेखक ने जोड़ा है। ग्रन्थ के प्रथाम अध्याय की समाप्ति पर सम्पूर्ण ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण करते हुए लेखक लिखता है कि इस ग्रन्थ में पाँच स्थान हैं जिन में सब मिला कर एक सौ बीस अध्याय हैं। पाँच स्थानों से अवशिष्ट विषय का उत्तरतन्त्र में वर्णन किया जायगा। इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट नहीं है क्योंकि यदि मूल लेखक ने ही अपनी पुस्तक को ६ भागों में विभक्त किया था तो उसे यह नहीं कहना चाहिये था कि इसमें पांच स्थान हैं। इसके अलावा उत्तरतन्त्र की स्वयं एक पृथक् भूमिका है जिसमें लेखक स्वीकार करता है कि कायचिकित्सा के ६ अंगों पर लिखे गये ऋषियों के ग्रन्थों से और शालाक्य शास्त्र पर के ग्रन्थ से यह संकलित किया गया है। इस लिये यदि हम सुश्रुत के उत्तरतन्त्र को छोड़ दें तो ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय शल्य रोगों के चिकित्सा विषयक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है।

इस प्रकार यह मालूम होता है कि बहुत प्रारम्भिक समय से हिन्दू चिकित्सक दो श्रेणियों शल्यचिकित्सक और कायचिकित्सक में विभक्त थे। सुश्रुत के प्रसिद्ध गुरु धन्वन्तरि या देवों के पौराणिक (Mythological) सर्जन धन्वन्तरि के पीछे शल्यचिकित्सकों को धान्वन्तरीय सम्प्रदाय भी कहा जाता था। चरक की रचना से पूर्व यह विभाग विद्यमान था क्योंकि जहाँ शल्यक्रिया का आश्रय लेने की जरूरत पड़ती थी वहाँ चरक भी आधुनिक चिकित्सकों की तरह अपने पाठकों को धान्वन्तरीयों (सर्जनों) की सलाह लेने के लिए संकेत करता था। इससे यह परिणाम निकालना असङ्गत न होगा कि शल्यकर्म में चरक से अधिक दक्ष सर्जन उसके समकालीन रहे होंगे और शल्य शास्त्र उस समय पर्याप्त विकसित होगा। शल्यतन्त्र का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ सुश्रुत माना जाता है। हिन्दुओं के शल्यतन्त्र का प्राचीन और उच्चतम विकसित ज्ञान भी उसी में समझा जा सकता है। सर्वोत्कृष्ट प्राचीन हिन्दू शल्यकर्मी (सर्जन) सुश्रुत के सर्वोत्तम पुरातन चिकित्सक चरक के समकालीन होने में यद्यपि कोई निश्चित प्रमाण नहीं दिये जा सकते तथापि सम्भव है कि यह उसके समय में या उससे पूर्व भी विद्यमान हो और सुश्रुत उसी काल में लिखा गया हो। कई विद्वानों के विचार में यह ईस्वी पूर्व एक हज़ार से पीछे नहीं लिखा

गया। कुछ लेखक उसे चरक के समय के लगभग या उसके कुछ पीछे का ग्रन्थ मानते हैं। चिकित्सा और शल्यक्रिया पर प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ चरक और सुश्रुत से चिकित्सा की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित अनेक पद्धतियाँ निकलीं।

प्राचीन समय में हिन्दू चिकित्सा-प्रणाली की सर्वोच्च उन्नति का ये दोनों ग्रन्थ अच्छा दिग्दर्शन कराते हैं। बहुत पहले ही दोनों ग्रन्थों का महत्व इतना अधिक समझा जाने लगा था कि बाद के लेखक और चिकित्सक इनको मनुष्य की समालोचना के विषय से परे दिव्य कृति समझने लगे थे। इन प्राचीन ऋषियों ने जो कुछ लिखा था उसमें किसी प्रकार भी काट छांट या परिवर्त्तन करने का उनका साहस न हुआ और सदियों तक यह ज्ञान बहुत कुछ उसी रूप में चलता रहा। समय की गति के अनुसार शल्य-क्रिया के ज्ञान और अनुभव का ह्रास होता गया और अब यह अवस्था है कि धान्वन्तरीय सम्प्रदाय का एक भी शल्यकर्मी भारत में अज्ञात सत्ता है।

सुश्रुत औषधियों को सैंतीस समूहों में विभक्त करता है और प्रत्येक वर्ग के प्रथम द्रव्य के अनुसार उस वर्ग का नामकरण करता है। प्रत्येक वर्ग की औषधियों में कुछ सामान्य गुण हैं जैसे अम्लता, मिठास, ग्राहित्व आदि। एक वर्ग के द्रव्य प्रायः एक साथ प्रयुक्त होते हैं और एक दूसरे के प्रतिनिधि रूप में लिये जा सकते हैं।

चरक और सुश्रुत के अध्ययन से हमें मालूम होता है कि इण्डो-आर्यन्स बहुत अधिक वनस्पतियों से परिचित थे। सुश्रुत में लगभग सात सौ पौदों के गुणों और उपयोगों का उल्लेख है। चरक में यह संख्या हज़ार से ऊपर पहुँच जाती है। यदि सुश्रुत चरक से पीछे की रचना मानी जाय तो इसमें चिकित्सा-पौदों की संख्या चरक से अधिक विकसित होनी चाहिए, परन्तु सुश्रुत का प्रतिपाद्य विषय शल्यतन्त्र होने से उसने वनस्पतियों का इतना अधिक विस्तार से उल्लेख नहीं किया।

चरक और सुश्रुत दोनों ग्रन्थों के सब पौदे भारत के ही मूलनिवासी नहीं थे। कुछ विदेशी औषधियाँ भी इस देश में बाहर से लाई जाती थीं और हिन्दुओं का अन्य देशों के साथ औषधियों का व्यापार भी होता था। मुलैठी भारत में नहीं उगती पर हिन्दू-चिकित्सा में इसका बहुत विस्तृत उपयोग होता था। यह एशिया माइनर और मध्य एशिया में उगती है और इस देश में मध्य एशिया के कबीलों द्वारा लाई जाती थी। हमें इसका जिक्र चरक और सुश्रुत में मिलता है। फिर भी दोनों ग्रन्थों के चिकित्सा-पौदे अधिकतर हिन्दुस्तान के ही मूलनिवासी थे।

प्राचीन हिन्दू वैद्यों का जड़ी बूटियों का ज्ञान बहुत विशाल था तथा वानस्पतिक औषधि-विज्ञान विस्तृत था और यद्यपि उन्होंने अत्यन्त विस्तीर्ण वानस्पतिक जगत् में से पहाड़ों और मैदानों पर उगी हुई क्रियाशील प्रभावक तत्वों वाली अनेकों बूटियों को चुन लिया था तथापि इस खयाल से कम आश्चर्य नहीं होता कि उन्हीं के साथ उगे हुए और बिलकुल वैसे ही अच्छे

क्रियाशील कई पौदे अछूते ही छोड़ दिये गये थे। एट्रोपा बेलाडोना (सुग-अंगूर), इफेड्रा (एक प्रकार का सोम), आर्टिमीज़िया (कृमिघ्नी, जिसमें से सेण्टोनीन निकलता है) आदि का उदाहरण के तौर पर नाम लिया जा सकता है। ये सब हिमालय में बहुत तादाद में होते हैं और तब भी इनकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया गया था। इन्हीं में से कुछ औषधियों को चीनी और अरबी चिकित्सक उस काल में सफलता पूर्वक इस्तैमाल करते थे।

प्राचीन हिन्दुओं को किसी उत्तम संज्ञाहर का ज्ञान नहीं था। कहा जाता है कि बुद्ध के कुछ समय पूर्व (लगभग ५०० ईस्वी पूर्व) एक संज्ञाहर द्रव्य सम्मोहिनी का प्रयोग किया जाता था। बनारस के एक सेठ के लड़के का पेट चीर कर उलझी हुई आंतों को बाहर निकाल कर फिर ठीक स्थिति में रख देना, राजगृह के एक सेठ के सात साल के पुराने रोग को अच्छा करने के लिए सिर का आपरेशन कर के कीड़े बाहर निकालना आदि, मगधराज बिम्बिसार के राजवैद्य जीवक कुमारभृत्य द्वारा किये गये कई आपरेशनों का बौद्ध-साहित्य में वर्णन आता है परन्तु जीवक इन आपरेशनों में सम्मोहन के लिये किसी औषधि का उपयोग नहीं करता था। रोगी को स्थिर रखने के लिये वह उसे खम्भे के साथ या शय्या पर अच्छी तरह बांध देता था जिससे वह हाथ पैर न मार सके। सुश्रुत के समय में यद्यपि शल्यक्रिया बहुत अधिक उन्नत थी परन्तु उस समय किसी संज्ञाहर द्रव्य का ज्ञान नहीं था। सुश्रुत शल्यकर्म से पूर्व प्रभूतमात्रा में मद्य पिला देता था और बेहोश हो जाने पर आपरेशन करता था।

इसी प्रकार नींद लाने तथा वेदना हटाने के लिये शीघ्रप्रभावकारी पाश्चात्य दवाओं जैसी औषधियां इस समय अज्ञात थीं। वानस्पतिक ज्ञान इस समय उच्च शिखर पर था और यही अवस्था इस काल के बाद भी बहुत समय तक बनी रही।

इस काल में ऐन्द्रिक पदार्थों विशेषकर काष्ठ औषधियों का प्रयोग ही बहुधा होता था। रसायन या खनिज पदार्थों को चिकित्सोपयोग के लिये तय्यार करने की विद्या तुलना में प्रारम्भिक समय में कम उन्नत थी। इस काल के हिन्दू धातुओं से अच्छी तरह परिचित थे। लोहे का उपयोग वे शल्यकर्म के लिये आवश्यक औजारों को बनाने में करते थे। लोहा, सोना, चांदी आदि धातुओं का उपयोग रोगनाश के लिये किया जाता था। श्वित्र कुष्ठ में लोहा, विष के विकारों में तांबा और सब प्रकार के विषों तथा गरों को नष्ट करने के लिये सोने का प्रयोग तथा इसी प्रकार अन्य अवस्थाओं में अनेक धातुओं का व्यवहार होता था। पारे के उपयोग को भी वे जानते थे। दवा के रूप में धातुयें प्रयुक्त होती थीं पर दवा के लिये खनिजों और अनैन्द्रिक पदार्थों का प्रयोग प्रायः कम होता था। उस समय के लोगों का विश्वास था कि हीरा आदि महंगे पाषाण धारण करने से विष का असर नहीं होता। इस प्रयोजन के लिए वे हीरा, पन्ना तथा कई प्रकार की मणियां और

ताबीज आदि पहना करते थे। प्राकृतिक लवणों जैसे सोडियम क्लोराइड (सोडियम हरिद्–सैन्धव), पोटाश और सोडा के अशुद्ध कर्बनित् और बोरेक्स आदि को भी प्रयोग किया जाता था। सुश्रुत पाण्डु में लोहा देता था और उसने संक्षेप में चांदी, तांबा, टिन, सीसक तथा मूल्यवान् पत्थरों के काल्पनिक गुणों की ओर भी संकेत किया है। इनकी भस्मनिर्माण या विशेष रोगों में देने के सम्बन्ध में उसने कोई विस्तृत आदेश नहीं दिये।

रसविद्या या हिन्दू–रसायन चरक सुश्रुत के काल में बहुत उन्नत नहीं थी। हिन्दू रसायन का विकास करने वाला सर्वप्रथम विद्वान् नागार्जुन माना जाता है। इसका काल बहुत अधिक विवादग्रस्त है। विभिन्न लेखकों ने तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व से नवीं शताब्दी ईस्वी पश्चात् तक इसका होना स्वीकार किया है। कुछ ऐतिहासकों ने इस का समय लगभग १५० ईस्वी माना है। यह बौद्ध सम्प्रदाय का था। इसने पारे के गुणों को अधिक गहराई से अध्ययन किया और उस के रासायनिक ज्ञान में वृद्धि की। इसके लिखे रसरत्नाकर ग्रन्थ में और शैव सम्प्रदाय के रसार्णव ग्रन्थ में हमें इस विषय का बहुत उपयोगी ज्ञान मिलता है। इससे मालूम होता है कि दूसरी शताब्दी ईस्वी तक भारतवासियों का धातु–विषयक और रासायनिक ज्ञान काफी उन्नत हो चुका था। इस समय के आचार्य त्वचा, सिरा, मांस द्वारा औषधि को शरीर में प्रविष्ट करना जानते थे। ब्रह्मरन्ध्ररस, सूचिकाभरणरस आदि योगों को सुई से तालु में गोद कर सुई द्वारा रख दिया जाता था।

सुश्रुत, चरक, भेल, हारीत संहिता आदि ग्रन्थ मौलिक अन्वेषण और प्रामाणिक लेखकों के काल की देन है। प्रथम दो ग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल के अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। जो ग्रन्थ मिलते भी हैं वे इतनी अच्छी अवस्था में नहीं हैं कि उनसे कुछ विशेष लाभ उठाया जा सके। बुरनेल के ताञ्जौर कैटलोग के भाग १ पृष्ठ ६२–६५ में भेल संहिता का पूरा विश्लेषण दिया गया गया है, जिससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ अब तक विद्यमान है यद्यपि खण्डित अवस्था में है। महामहोपाध्याय कविराज श्री गणनाथ सेन ने इससे अधिक उपयोगी ग्रन्थ नहीं पाया है। श्री यादव जी ने काश्यपसंहिता प्रकाशित कराई है। एक हारीतसंहिता भी प्रकाशित हुई है परन्तु उसकी प्रामाणिकता सन्देहास्पद है। चरक और सुश्रुत पर चक्रपाणि से लेकर शिवदास तक के टीकाकारों ने इनकी टीका में हारीतसंहिता के जो उद्धरण दिये हैं वे मुद्रित संहिता में नहीं उपलब्ध होते।

(क्रमशः)

भारतीय औषधिविज्ञान का इतिहास।

लेखक—श्रीयुत रामेश बेदी, आयुर्वेदालङ्कार।

विकास और विदेशों में प्रसार।

(५)

बौद्धधर्म के उदय ने प्राचीन भारत में चिकित्सा के अध्ययन को एक प्रवाह दिया। तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सम्राट् अशोक की आज्ञा से भारत के सब मुख्य मुख्य शहरों में बीमारों और घायलों के लिये आतुरालयों की स्थापना हो गई। सम्राट् अशोक ने मिस्र और ग्रीक राजाओं के राज्य में धर्मप्रचारार्थ बौद्ध भिक्षुओं को भेजा। साईबेरिया और मध्य एशिया के डरावने उजाड़ प्रदेशों में से गुजरते हुये और जङ्गली कबीलों को सदाचरण और मानवीयता के सिद्धान्तों का उपदेश देते हुये बौद्ध प्रचारक बीमारों और घायलों की चिकित्सा करने का भी पूरा ध्यान रखते थे। उन्हें एक प्रकार से चिकित्सक प्रचारक कहा जा सकता है। भारतीय चिकित्सा–प्रणाली का इनके द्वारा उन देशों में प्रसार हुआ जिन्होंने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। बौद्ध अपने साथ अन्य देशों की औषधियाँ भारत में लाये और इस प्रकार भारतीय चिकित्सकों के पहले से उन्नत और विस्तृत औषधिविज्ञान को समृद्ध बनाया।

इस समय औषधियों का विधि–पूर्वक अन्वेषण और उनकी कृषि होने लगी थी। एक शिला-लेख में सम्राट् अशोक लिखते हैं–देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य में सब स्थानों पर तथा जो उनके पड़ौसी राज्य हैं वहाँ भोज–पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी में और अन्तियोक नामक यवन राजा और उस अन्तियोक के जो पड़ौसी राजा हैं, उन सब देशों में देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा एक मनुष्यों की चिकित्सा और दूसरी पशुओं की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है; और जहाँ मनुष्यों और पशुओं के लिये उपयुक्त औषधियाँ नहीं प्राप्त होती थीं। वहाँ लाई और लगाई गई हैं। इसी तरह से फूल और फल भी जहाँ नहीं थे वहाँ लाये और लगाये गये हैं……। (चतुर्दश शिलालेख लेख संख्या १)। इस शिलालेख से स्पष्ट है कि अशोक के राज्य-काल में न केवल भारत में ही परन्तु भारत की सीमाओं के बाहर भी भारतीय चिकित्सा को फैलाने में राजकीय सहायता मिली थी और सम्राट् अशोक का ध्यान बूटियों की खेती की ओर गया था।

आप निश्चय रखिये कि आपको महाविद्यालय की स्थापना में अवश्य सहायता देनी होगी।—सं०

सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रधान मन्त्री आचार्य द्वारा निर्मित कौटिलीय अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें मालूम होता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल (३२२ ईस्वीपूर्व से १९८ ईस्वी पूर्व तक) में भी औषधियों तथा चिकित्सा में उपयोग होने वाली वनस्पतियों की उत्पत्ति के लिये राज्य की ओर से प्रबन्ध था। कौटिल्य लिखते हैं–राजकीय भूमि में औषधियों की उत्पत्ति के लिये कुछ भाग पृथक् कर लिया जाय और क्षीर, ह्रीवेर, पिण्डालुक आदि गन्ध भैषज्य तथा जलीय प्रदेश में उगने वाली औषधियों को उन के आकार प्रकार और प्रकृति के अनुसार ज़मीन या गमलों में लगाया जाय (कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० ४, अध्याय १)।

चन्द्रगुप्त के समय में राज्य की ओर से अनेक चिकित्सालय संचालित होते थे। उनके साथ भैषज्यगृह (औषधि–भण्डार) या औषधि–शालाएँ होती थीं (कौ० अ०, अधि० २, अध्याय ३)। इनमें सब प्रकारके स्नेह, धान्य, क्षार, लवण, भैषज्य, सूखे शाक, जौ, सूखा मांस, तृण, लकड़ी और लोहे का सामान, जानवरों की खालें, कोयले, स्नायु, विभिन्न प्रकार के औषधोपयोगी विष, बाँस, वृक्षों की त्वचाएँ, दवाइयों के सार भाग, जङ्गल से लकड़ी लाने के उपकरण, औषधि आदि को ढकने के पदार्थ, दवाई तय्यार करने तथा अन्य उपयोगों के लिये पत्थर आदि उपकरणों को इतनी बड़ी मात्रा में रक्खा जाता था कि वर्षों तक समाप्त न हो सकें। पुरानी वस्तुओं को बदल कर उन के स्थान पर नई रख दी जाती थीं (कौ० अ० २/४)। औषधियों के निर्माण में स्वाद और शुद्धता का पूरा ध्यान रखा जाता था। बनाने वाला पाचक और पोषक तथा वैद्य स्वयं औषधि को चख कर और स्वाद तथा शुद्धता की परीक्षा करके राजकर्मचारी के पास प्रामाणिकता प्राप्त करने के लिये औषधि को भेजता था (कौ० अ० १।२१)। जिन दवाओं की शुद्धता राजकर्मचारियों द्वारा प्रमाणित हो जाती थी उनके स्थान पर उसी तरह की या मिलावटी दवाएँ बेचने वालों पर जुर्माना किया जाता था (कौ० अ० ४।२)।

इस समय चिकित्सा-शास्त्र बहुत उन्नत था। आयुर्वेद की विभिन्न शाखाओं का अभ्यास करने वाले (कौ० अ० १।२०, १।२१, २।३६), घोड़े (कौ० अ० २।३६), और गाय, बैल, हाथी आदि का इलाज करने वाले (कौ० अ०, अधि० २ म), चिकित्सा का स्वतन्त्र रूप से पेशा करने वाले आदि अनेक प्रकार के चिकित्सक उस समय थे और इनके चिकित्सक पेशे के सम्बन्ध में विस्तृत नियम बने हुये थे (कौ० अ० ६।१)। शहर की सफाई आदि (कौ० अ० २।३६), प्रजा की स्वास्थ्य-रक्षा के सामान्य नियमों (कौ० अ० २।३६), बीमारियों को फैलने से रोकने के उपायों (कौ० अ०-४।३), मृतकदेहपरीक्षा पोस्टमार्टम एग्जामिनेशन–(कौ० अ० ४।६) आदि की ओर उस समय के वैद्यों और स्वास्थ्यरक्षक चिकित्सकों ने ध्यान दिया था।

बौद्ध काल में आयुर्वेद विद्या अत्यन्त उन्नत थी। तक्षशिला, काशी आदि विश्वविद्यालयों में आयुर्वेद का अध्ययन होता था। श्रीयुत हार्नले आत्रेय को तक्षशिला–विश्वविद्यालय में महात्मा

बुद्ध के समय में या उस से कुछ समय पूर्व चिकित्सा का मुख्य उपाध्याय मानते हैं। रौकहिल द्वारा लिखित महात्मा बुद्ध की जीवनी के अध्ययन से प्रतीत होता है कि बुद्ध के समकालीन प्रसिद्ध वैद्य जीवक ने तक्षशिला में ही आयुर्वेद का अध्ययन किया था। जीवक के आश्चर्यजनक चिकित्सा ज्ञान और चिकित्सा कार्यों का वर्णन जातक ग्रन्थों में आता है। उनमें से कुछ एक का हमने पहले उल्लेख किया था। सम्राट् चन्द्रगुप्त से पूर्व ही भारत में चिकित्साशास्त्र उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच चुका था।

प्राचीन हिन्दुओं ने जिस समय रसायन अर्थात् धातुओं व खनिजों से चिकित्सा के ज्ञान में अच्छी उन्नति कर ली थी उस समय तक हिन्दू चिकित्सा शास्त्र का प्रत्येक अंग उन्नत और विकसित हो चुका था, ऐसाकहा जा सकता है और अब आयुर्वेद अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर पर था। आयुर्वेदिक चिकित्सा इस समय भारत की सीमाओं से बाहर बहुत दूर तक चली गई थी। उस समय के सभ्य संसार की जातियाँ तत्कालीन हिन्दुओं से स्वास्थ्यरक्षा–विद्या के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के लिये उत्सुक रहती थीं। हिन्दू चिकित्सा का प्रभाव दूर दूर तक मिश्र, यूनान और रोम में पहुँच गया था। हिन्दू चिकित्सा ने ग्रीक और रोमन चिकित्सा की दिशा बदल दी और ग्रीक के द्वारा एरेबिक चिकित्साके प्रवाह में परिवर्तन लादिया। ग्रीक और रोमन चिकित्सा भी हिन्दू चिकित्सा के प्रभाव से अलग न रही। महान् एलेग्जेण्डर की विजयों के साथ साथ हैलेनिक सभ्यता भारतीय सभ्यता के घनिष्ठ सम्पर्क में आगई। इससमय भारतीय चिकित्सा अपने पूर्ण गौरव पर थी। औषधि, चिकित्सा तथा विष-विद्या के क्षेत्र में हिन्दू चिकित्सकों का ज्ञान दूसरों की अपेक्षा कहीं बढ़ा चढ़ा था। उन्होंने भूमि की प्रत्येक उपज के गुणों का गहरा अध्ययन किया था और रोग के अध्ययन तथा औषधियों से उसकी चिकित्सा करने में वे लोग विधिपूर्वक ध्यान देते थे। प्लीनी (२३ ईस्वी पश्चात्) ने 'दि नेचुरल हिस्ट्री ऑफ प्लीनी' में भारत में उगने वाले पौदों का वर्णन किया है। अंजीर वृक्ष (Fig Tree), वह लिखता है, इस देशमें छोटे फल उत्पन्न करते हैं। वे स्वयं उग आते हैं और सुदीर्घ शाखाओं वाले होकर दूर दूर तक फैल जाते हैं। इनकी शाखाओं के सिरे जमीन की ओर नीचे इतना झुक जाते हैं कि साल भर में उनमें से फिर जड़ें निकल आती हैं और शिशु पौदे अपने उत्पादक वृक्ष के काण्ड के चारों ओर वृत्ताकार में बढ़ते हैं मानों उद्यान में सजावट के लिये लगाये गये हों। अधिक छायावान् और शाखाओं से निकले हुये तनों के सुरक्षित घेरे में गड़रिये गरमियाँ बिताना पसन्द करते हैं। इसके फल मनके से बड़े नहीं होते। प्लीनी का अभिप्राय इस वृक्ष से वट वृक्ष का प्रतीत होता है। पीपल, अनार, जैतून और कालीमिरच का भी प्लीनी ने वर्णन किया है। एक वृक्ष के मीठे फलों को खाने से पेट में गड़बड़ हो जाने से एलेग्जेण्डर ने अपने सैनिकों को उसे छूने से मना कर दिया था। सम्भवतः यह इमली का वृक्ष हो जिस के फलों का मामूली सा अनुलोमक प्रभाव होता है। एक वृक्ष से उसने मलमल बनाते देखा था। हिमालय

के लम्बशिख चीड़ और देवताओं के वृक्ष–देवदारु-उसे कम आकर्षक नहीं प्रतीत हुए थे। वह कालीमिरच की खेती, उसकी किस्में, संग्रह और उसमें लगने वाले एक रोग का, जिसमें कालीमिरच खोखली हो जाती है, वर्णन करता है। मालूम होता है उस समय इसकी कृषि में भारतीय दक्ष थे। सोंठ, पीपल, और लालमिरच का भी वह जिक्र करता है। वह लिखता है, "दोनों किस्म की मिरचों और सौंठ के बदले में हमें यहाँ सोना और चाँदा देकर ये चीजें खरीदनी पड़ती हैं। भारतीय मिरचें सब से अच्छी होती हैं।" एक प्रकार के पौदे की जड़ की एक औषधि बन कर ऊँट की खाल की थैलियों में भर कर उन दिनों उन के देश में जाती थी। एक औषधिलीसिअन (Lycion) का नर्मदा तट के भड़ौच शहर से बाह्य व्यापार होता था। एक वृक्ष की लम्बी मूल की लाल त्वक् का कषाय, वह लिखता है, शहद के साथ प्रवाहिका में दिया जाता है। सम्भवतः यह कुटजत्वक् हो। प्लीनी कहता है, "एरेबियन भी खाँड पैदा करते हैं पर भारतीय खाँड कहीं अच्छी है। एक कंटीली झाड़ी से मूल्यवान् रसकी बूंदें चूती हैं। यह बोल (Myrrh) वृक्ष से मिलता हुआ है। काँटों के कारण इसके पास सावधानी से जाना चाहिये। एक प्रकार की विषैली झाड़ी होती है जिसकी जड़ मूली की तरह होती है और पत्ते लौरेल (Laurel) की तरह तथा गन्ध मानों घोड़ों को निमन्त्रित कर रही हो।" यह········प्रतीत होता है। "एक किस्म की कंटीली झाड़ी का रस आँख में डालने से अन्धे हो जाते हैं।" यह पौदा एक्सिकेरिया एगालोकम (Excæcaria-Agallochum) हो सकता है। गुग्गुलु के वृक्ष और गोंद का वर्णन, उत्पत्तिस्थान, भौतिक गुण, उसकी मिलावटें और मूल आदि के सम्बन्ध में प्लीनी ने विस्तार से लिखा है। उन दिनों यह तीन डिनैरी (Denarii) का एक पौंड मिल जाता था। एक डिनेरिअस (Denarius) आठ पेन्स तीन फार्दिंग्स के बराबर होता था। यहाँ ऐसे वृक्ष भी होते थे जिन की छाल से उस समय वस्त्र बनाये जाते थे। कुष्ठ सफेद और काला दो किस्म का मिलता था, सफेद अच्छा समझा जाता था और इसका दाम पाँच डिनैरी प्रति पौण्ड था। जटामांसी में बहुत मिलावट की जाती थी, इसका दाम सौ डिनैरी प्रति पौण्ड था। इलायची की चार किस्में बाजार में मिलती थीं, सर्वोत्तम किस्म का मूल्य तीन डिनैरी था। भारतीय सरकण्डे सब से अच्छे समझे जाते थे। जैतून वृक्ष, चिरायता (Gentiana Chirayata) सुगन्धतृण (Andropagon), जलीय और समुद्रीय पौदे, खजूर के वृक्ष से ताड़ी निकालना, चेस्टनट और तिल से तेल पेरना, आदि का वर्णन प्लीनी ने किया है।

साँपों के लिये भारत बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध रहा है। प्लीनी एक किस्म के छोटे साँप का जिक्र करता है जो वनस्पतियों में छिपा रहता है और जिसके दंश से सहसा मृत्यु होजाती है। यह साँप सम्भवतः ह्विप स्नेक (Whip Snake) है जो वृक्षों के पत्तों में छिपा रहता है और जिसका विष बहुत घातक होता है। स्ट्रैबो (लगभग २१ ईस्वी पश्चात्)ने भारत में सोलह हाथ(क्यूबिट्स) लम्बे साँप देखे थे। एरिस्टोब्यूलस (Aristoboulos)ने नौ क्यूबिट और एक स्पैन(बालिश्त)लंबा केवल

एक साँप देखा था। ईजिप्ट में भी उसने इतना ही लम्बा एक साँप देखा था जो भारत से लेजाया गया था। कोबरे, बिच्छू और छोटे अनेक साँप उसने भारत में देखे थे। छोटे पतले साँप (सम्भवतः कोबरा) से उसका अभिप्राय है। वह कहता है—घरों में, दीवारों में, और झाड़ियों में रहते हैं "ये बहुत भयानक होते हैं। इनके काटने पर रक्तस्राव और वेदना अत्यधिक होती है और यदि सहायता शीघ्र न पहुँचाई जाय तो मृत्यु हो जाती है, परन्तु भारतीय जड़ियों और दवाइयों की उत्तमता के कारण तुरन्त आराम हो जाता है।" नियार्कस भी साँपों के सम्बन्ध में हमें बताता है कि धब्बेवाले साँपों को लोग पकड़ रखते हैं और पालते हैं। एरिटजेनीस के पुत्र पीथो ने सोलह क्यूबिट लम्बा एक साँप पकड़ा था। उसने सुना था कि लम्बाई में सबसे बड़े पाये जाने वाले साँप इससे भी बहुत लम्बे होते हैं। वह लिखता है कि किसी ग्रीक चिकित्सक को भारतीय साँप के काटे का इलाज नहीं मालूम। यद्यपि यह निश्चित है कि भारतीय चिकित्सक साँप के काटे हुये आदमी को अच्छा कर देते हैं। नियार्कस के कथनानुसार सिकन्दर (३२६ ईसा पूर्व) भारतवर्ष में अपने साथ हिन्दू वैद्यों को रखता था। चिकित्सा में उनके बुद्धिचातुर्य का वह कायल था। सर्पदंश और अन्य रोगों को अच्छा करने के लिये ग्रीक कैम्पके सिपाहियों में इन चिकित्सकों के बुद्धिकौशल की धाक जमी हुई थी। सिकन्दर ने अपनी सेना में घोषणाकर रखी थी कि कोई व्यक्ति साँप से डस जाय तो उसे शाही कैम्प में आकर इलाज करवा लेना चाहिये। केवल सर्पदंश में ही नहीं अपितु अन्य भयानक रोगों के विषय में भी वह भारतीय चिकित्सकों से सलाह लेता था। तब कोई आश्चर्य नहीं कि हिन्दुओं के औषधिविज्ञान से ग्रीक चिकित्सकों ने रोग दूर करने की विद्या को अपनाकर अपना अंग बना लिया हो और अपने औषधिविज्ञान को समृद्ध किया हो। यह विश्वास करना युक्तियुक्त है कि पैरासेल्सस, हिक्रेट्स और पाइथेगोरस आदि कई पाश्चात्य दार्शनिक वस्तुतः पूर्व में आये और हिन्दू सभ्यता को अपने देशोंमें लेजाने में सहायक हुये। विद्वान् चिकित्सक डिओस्कोरोयड के कार्य से निश्चित रूप से प्रकट होता है कि पाश्चात्य किस हद तक चिकित्सा में भारत और पूर्व के ऋणी थे। उसके प्रथम ग्रन्थ में बहुत से भारतीय पौदों विशेषकर औषधियों के सुगन्धित मसालों के समूह का जिक्र है जिसके लिये भारत की हमेशा ख्याति रही है। दमे की अवस्थाओं में धतूरे का धूम्रपान, पक्षाघात और अजीर्ण में कुचले का प्रयोग और विरेचक गुण के लिए दन्ती का प्रयोग निश्चित रूप से मूल रूप में प्राचीन भारत से खोजा जा सकता है। धतूरे के अति धूम्रपान से उत्पन्न प्रभावों की ओर भी उनका ध्यान खिंचा था।

ग्रीक आक्रमण प्राचीन भारत की चिकित्सा पर प्रभाव डाले बिना न रहा। सिकन्दर की सेना के साथ के दार्शनिक विद्वानों ने हिन्दुओं से आधिभौतिक, दार्शनिक और आयुर्वैदिक विद्याओं के सम्बन्ध में बहुत कुछ सीखा। एलेग्जेण्डर के विजेताओं ने ग्रीस और भारत को एक दूसरे

के अधिक समीप लादिया। दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध भी हो गया। इस प्रकार मध्य एशिया और एशिया माइनर की बहुत सी औषधियाँ हिन्दुस्तान में प्रविष्ट हो गईं।

रोमनिवासी भी भारतीय औषधियों में दिलचस्पी लेते थे। शताब्दियों पूर्व भारत और रोम के बीच में भारतीय औषधियों का बाह्य व्यापार था। बहुत अधिक विभिन्न प्रकार की जलवायुओं के कारण और हिमालय जैसे पहाड़ों की आश्चर्यकारक शृङ्खलाओं के होने के कारण बहुत पहले से ही यह देश वानस्पतिक औषधिविज्ञान की उत्तम नर्सरी के रूप में समझा जाता था। प्लीनी के समय में, जैसा कि हमने पहले कहा, इस औषधि व्यापार का अनुपात वास्तव में इतना अधिक बढ़ गया था कि उसने भारतीय मँहगी औषधियों और मसालों के खरीदने में रोमन सोने के भारत में भारी निर्यात की शिकायत की थी।

दो ग्रीक चिकित्सक, मेगास्थनीज और क्टेसियस, तीन सौ ईस्वी पूर्व में और चार सौ ईस्वी पूर्व में भारत में आये थे। चीन से एक ज्ञानयात्री इत्सिङ्ग सातवीं शताब्दी में तथा अन्य कई विदेशी ज्ञानपिपासु भारत में भ्रमण करते रहे। इनके यात्रावृत्तान्तों और इनकी लिखी पुस्तकों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि भारत में वैद्यक शास्त्र बहुत उन्नत रहा है और ये लोग ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से ही भारत आये थे तो इस परिणाम पर पहुँचना अयुक्तिपूर्ण न होगा कि इनके द्वारा हिन्दू चिकित्सा उन देशों में फैली जिनके ये निवासी थे। इनके द्वारा भारत में प्रचलित चिकित्सा प्रणाली पर लिखे गये विवरणों और पुस्तकों को देखने से हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इन्होंने हिन्दुओं के वैद्यकशास्त्र से बहुत कुछ सीखा और कितने ही इस देश के चिकित्सा-पौदे इन्हीं के द्वारा इनके देशों में प्रचलित हो गये। इत्सिङ्ग की भारतयात्रा के चिकित्सा प्रकरण के पढ़ने से ज्ञात होता है कि उस समय के चीनियों की चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाली औषधियों की संख्या चार सौ से अधिक नहीं थी। अन्य देशों का औषधिविज्ञान भी भारतीय औषधिविज्ञान से कहीं पीछे था। ऐसी अवस्था में यह निःसङ्कोच स्वीकार किया जा सकता है कि विभिन्न कालों में भारत में आने वाले विदेशियों द्वारा भारतीय औषधिविज्ञान और रोग अच्छा करने की विद्या, आयुर्वेद, भारत की सीमाओं को लाँघ कर दूर देशों में पहुँच गये थे।

ईसाई युग की प्रारम्भिक शताब्दियों में एरेबियन चिकित्सा पर ग्रीस के ज्ञान का बहुत प्रभाव पड़ा था। यद्यपि उस काल के रसायन-शास्त्रियों के अध्ययन और खोजों का मुख्य विषय लोहे को छूने मात्र से सोना बना देने वाले काल्पनिक पारस-पत्थर और जीवन के रस अमृत को खोज निकालना था तथापि इन्होंने बहुत सी वास्तविक उपयोगी खोजें भी की थीं। वर्तमान समय में भी एलेम्बिक, एल्कोहल और ऐसे ही अन्य प्रचलित शब्दों से मालूम होता है कि इन में से कितनी ही खोजों के लिये हम अरबों के ऋणी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि रसायन और विज्ञान के क्षेत्र में अरबों ने बहुत से उन वैज्ञानिक सिद्धान्तों की अभिवृद्धि की जिन्हें उन्होंने

यूनानियों से परम्परा द्वारा प्राप्त किया था। अरबों की ईजिप्ट-विजय से एक शताब्दी पूर्व भी ग्रीक-चिकित्सा को अपनाने की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी। पर्शिया में पाँचवीं शताब्दी में विद्यमान पर्शियन जुण्डि-शेपर विद्यालय का भी एरेबियन चिकित्सा पर प्रभाव पड़ा था। आठवीं शताब्दी के लगभग मध्य में बगदाद का शहर जब नया ही बना था तो प्राचीन ज्ञान एक बड़ी धारा के रूप में इस्लाम संसार की ओर बहने लगा और वहाँ से यह फिर एरेबियन जामा पहन कर नई शक्ल में दुनियाँ के सामने आता था। इस प्रकार चिकित्सा की मुस्लिम प्रणाली औषधिविज्ञान का एक समृद्ध खजाना अपने साथ लेकर आई जो इस देश को सर्वथा अज्ञात था। मध्य एशिया की भी कई औषधियाँ ये अपने साथ हिन्दुस्तान में लाये। हिन्दू भी उन औषधियों को अपनाने में पीछे न रहे जिनका मुस्लिम विजेताओं ने उन्हें ज्ञान कराया था। मुसलमानों द्वारा हिन्दुस्तान में लाई हुई औषधियों में सब से महत्वपूर्ण सम्भवतः अफीम थी। भारत में मुसलमानी सत्ता से पूर्व हिन्दुओं के औषधिविज्ञान के ग्रन्थों में अफीम का उल्लेख शायद ही कहीं मिलता हो। अरबों ने विज्ञान और कला की उन्नति की ओर बहुत ध्यान दिया था। यद्यपि उन्होंने किसी नवीन चीज की खोज या आविष्कार नहीं किया परन्तु प्राचीन संसार को ज्ञात बहुत से विज्ञानों को उन्होंने सुरक्षित रखा। ग्रीक और हिन्दुओं के दार्शनिक तथा वैज्ञानिक गौरव का आधुनिक संसार से परिचित होना उनके बिना सन्देहास्पद था। बगदाद के शासकों के दरबारों को हिन्दू वैद्यों ने सुशोभित किया था। चरक, सुश्रुत, निदान आदि हिन्दुओं के चिकित्सा-ग्रन्थ आठवीं सदी के प्रारम्भ में अरबी में अनूदित किये गये। चरक और सुश्रुत के अरबी अनुवाद का नाम शरक और सस्रद् है। (क्रमशः)

भारतीय औषधिविज्ञान का इतिहास।

लेखक—श्रीयुत रामेश वेदी, आयुर्वेदालङ्कार।

संग्रहकारों का युग। (६)

संस्कृत साहित्य में चिकित्सा-ग्रन्थ और खासकर छोटे संग्रह-ग्रन्थों की संख्या बहुत अधिक है। मालूम होता है कि छपाई के अभाव में चिकित्सा की शिक्षा देने वाले गुरु अपने शिष्यों के लिये छोटे छोटे संग्रह-ग्रन्थ तय्यार कर लिया करते थे जिनके अन्दर उन योगों का समावेश होता था जो उस समय प्रचलित थे या जिन्हें वे व्यवहार में लाते थे। अपने वैयक्तिक उपयोग के लिये शिष्य इनकी नकल कर लिया करते थे और चिकित्सा व्यवसाय करते हुये उन्हें जो नवीन अनुभव होते थे वे भी इसमें जोड़ दिये जाते थे। इस प्रकार चिकित्सासम्बन्धी ज्ञान की अनेक रचनाएं बनीं जिनमें तत्तत्कालीन ज्ञान का समावेश है। इन ग्रन्थों को संहिता कहा जाता था और रचनाओं के लेखकों के नाम के अनुसार इनका नामकरण करने की प्रथा थी। रचना की अच्छाई और लेखक की ख्याति के विस्तार के अनुसार इन संहिताओं का प्रचार कम या अधिक होता था।

चरक और सुश्रुत दो मौलिक ग्रन्थों के बाद समस्त भारत में आयुर्वेद का सर्वोच्च विद्वान् वाग्भट हुआ। वास्तव में भारत में दक्षिण के बहुत से भागों में चरक और सु ुत के नाम तक भुला दिये गये थे और वाग्भट एक प्राचीन ऋषि लेखक के रूप में समझा जाता था, और इस लिये हैस्स महोदय के यह परिणाम निकालने में कि चरक तथा सुश्रुत ने वाग्भट से बहुत कुछ ग्रहण किया यह भी एक कारण हो सकता है। इसी तरह कई लेखक इस परिणाम पर पहुँच गये हैं कि वाग्भट की रचना अष्टाङ्गहृदयसंहिता चरक और सुश्रुत के बाद की रचना नहीं है।

वाग्भट की कृति अष्टाङ्गसंग्रह, चरक तथा सुश्रुत का संग्रह है और भेल तथा हारीत संहिता से भी उस ने थोड़ा बहुत लिया है। उसका अपना या जिसे मौलिक कहा जा सकता हो ऐसा उस में बहुत कम या नहीं के बराबर है। अष्टाङ्गसंग्रह के लेखक वाग्भट ने ही अपने ग्रन्थ का संक्षेप करके अष्टाङ्गहृदय ग्रन्थ लिखा, यह अष्टाङ्गहृदय के अध्ययन से मालूम होता है। दोनों ग्रन्थों में आयुर्वेद के आठों अङ्गों का प्रतिपादन किया है। चरक और सुश्रुत के समान ही

इन ग्रन्थों का लेखक रोगों की चिकित्सा में पारे का विशेष वर्णन नहीं करता। वाग्भट के समय में काष्ठौषधियों को सोने के पत्र में लपेट कर बनाये ताबीज को रोगोन्मुक्ति के लिये हाथ पर बांधा जाता था। इन दो सर्वप्रथम संग्रह-ग्रन्थों के लेखक वाग्भट का समय कुछ विद्वानों ने पांचवीं शताब्दी के लगभग ठहराया है।

काल की दृष्टि से अगले दो ग्रन्थ क्रमशः माधवकर का निदान और चक्रपाणिदत्त का चक्रदत्त संग्रह है। चिकित्सा के आवश्यक अङ्ग निदान को प्रतिपादन करने वाला हिन्दू साहित्य में मुख्य ग्रंथ माधवनिदान है। यह ग्रन्थ रोगों के कारण, लक्षण और साध्यासाध्यता पर प्रकाश डालने वाला संक्षिप्त ग्रंथ है। इसके रचयिता माधवकर ने चरक, सुश्रुत और वाग्भट की रचनाओं में से रोगों के निदान के स्थलों को इसमें संग्रहीत कर दिया है। भारत में सर्वत्र हिन्दू चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों से रोग-विकृति-विज्ञान (पैथोलोजी) की पाठ्य-पुस्तक के रूप में यह ग्रंथ बहुत दिनों से पढ़ा जा रहा है। बगदाद के खलीफा के लिये अनूदित किये गये चिकित्सा-ग्रन्थों में से निदान भी एक है; इस लिये यह आठवीं शताब्दी में तो सुगमता से रखा जा सकता है। हसन और मन्सूर (७७३ ईस्वी) के काल में और सम्भवत: उससे पूर्व फारसी में इसका अनुवाद हो गया था। वाग्भट और निदान चरक तथा सुश्रुत का संक्षेप मात्र हैं। ये ऐसे समय में लिखे गये प्रतीत होते हैं जब पहले दोनों ग्रन्थ बहुत पुराने हो गये थे और इस लिये सर्वसाधारण वैद्यों तक इन्हें पहुँचाने के लिये इन में से सार निचोड़ लिया गया था।

माधवकर के निदान में प्रतिपादित रोगों के क्रम के अनुसार चक्रदत्त-संग्रह रोगों की चिकित्सा का वर्णन विस्तार से करता है। इसमें प्रधानतः वानस्पतिक या काष्ठ-औषधियों का वर्णन है। इसमें कुछ ऐसे योग भी दिये हैं जिनमें पारा पड़ता है और उनमें यह गन्धक तथा वानस्पतिक पदार्थों के साथ मिला हुआ है। ऊर्ध्वपातन और लवणों आदि के रासायनिक मिश्रण द्वारा पारद निर्माण के ज्ञान से यह अनभिज्ञ था। मालूम होता है कि पारा उसके समय में प्रयोग में आने ही लगा था। अफ़ीम का यह उल्लेख नहीं करता। इस लिये यह ग्रन्थ मुसलमानों द्वारा भारत में इस औषधि के लाये आने से पूर्व लिखा गया था।

चरक और सुश्रुत दोनों ग्रन्थों के बहुत प्राचीन हो जाने पर और तत्कालीन वैद्यसमुदाय द्वारा दुर्बोध समझे जाने पर चक्रपाणि और डल्लण दो उच्चकोटि के विद्वानों का इनकी टीका करने की ओर ध्यान गया। इन्होंने दोनों ग्रन्थों की संस्कृत में टीकाएं कीं जिससे सामान्य चिकित्सक-समाज इन्हें सुगमता से समझ सके। सुश्रुतसंहिता पर प्राचीनतम उपलब्ध टीका चक्रपाणिदत्त-लिखित भानुमती टीका है। चक्रपाणि ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यभाग में हुआ था। सुश्रुत पर दूसरी टीका डल्लण की निबन्ध-संग्रह टीका मिलती है। डल्लण चक्रपाणि के समकलीन या समीपकालीन था। महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेन के मत में यह दसवीं शताब्दी के शेषार्द्ध या ग्यारहवीं

शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ है (प्रत्यक्षशारीरम् उपोद्घात पृष्ठ २६)। जैय्यट, गयदास, भास्कराचार्य और माधवाचार्य ने भी सुश्रुत पर टीकाएं कीं। हेमाद्रि और वाचस्पति निबन्ध-संग्रह टीका के उद्धरण देते हैं। इनका काल सम्भवतः १२६० ईस्वी है। डल्लण स्वयं चक्रपाणि के उद्धरण देता है और क्योंकि चक्रपाणि का काल १०६० ईस्वी माना जाता है इस लिये डल्लण १०६० ईस्वी और १२६० ईस्वी के बीच के समय में हुआ होगा। गयदास चक्रपाणिदत्त का समकालीन प्रतीत होता है। चक्रपाणिदत्त ने चरकसंहिता पर जो व्याख्या की है वह 'चरक-तात्पर्य-टीका' या 'आयुर्वेद-दीपिका' के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि यह व्याख्या प्रामाणिक समझी जाती है परन्तु सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं होती। तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध के पहले भाग में अरुणदत्त ने वागभट पर टीका की। विजयरक्षित और उसके शिष्य श्रीकण्ठ ने तेरहवीं सदी पूर्वार्द्ध के पिछले भाग में निदान पर टीकाएं कीं।

रोगों के वर्णन और चिकित्सा पर विधिपूर्वक लिखे गये उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत में अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें औषधियों और भोज्य पदार्थों के पर्यायों और गुणों का ही वर्णन है। भारतीय इतिहास के मुग़लकाल में भारतीय द्रव्यगुण पर लिखे गये ग्रन्थों में से प्रसिद्ध तथा मुख्य ग्रन्थ राजनिघण्टु, मदनपाल-निघण्टु और भावप्रकाश हैं। उनमें केवल औषधियों के गुण-दोष पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ प्रथम तीन हैं। राजनिघण्टु सब से पुरातन ग्रन्थ है। सामान्यतया यह भी धन्वन्तरि की कृति कही जाती है, परन्तु वास्तव में इसका रचयिता नरहरि पण्डित है जो दक्षिणीय भारत का निवासी था। पारे और अफ़ीम दोनों का इसमें वर्णन है इस लिये यह बहुत पुराना नहीं हो सकता। खयाल किया जाता है कि यह बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी के बीच में हुआ था। मदनपाल-निघण्टु का रचयिता कन्नौज का राजा मदनपाल था और इसका समय लगभग बारहवीं शताब्दी माना जाता है। कैयदेव-निघण्टु के लेखक के नाम तथा स्वयं ग्रन्थ के निश्चित नाम और समय आदि पर काफी वाद-विवाद है। श्रीयुत पी० के० गोडे ने इसका निर्माण-काल १४५० ईस्वी के लगभग सिद्ध किया है। वर्तमान काल में इस विषयक कुछ अन्य ग्रन्थ भी सामान्य उपयोग में हैं। बंगाल में राजवल्लभ और उड़ीसा में शरत्कण्ठ-रत्नाभरण प्रचलित हैं। शार्ङ्गधर-संहिता बंगसेनसंहिता, भावप्रकाश तथा भारतीय द्रव्य-गुण पर निघण्टु आदि आयुर्वेदिक साहित्य के प्रसिद्ध सब ग्रन्थ संग्रह-ग्रन्थ हैं।

हिन्दू चिकित्सा पर सब से पीछे लिखा गया महान् ग्रन्थ भावमिश्र का भावप्रकाश समझा जाता है। इसमें शरीर-रचना (एनाटमी), शरीर क्रिया (फिजिओलोजी), शल्य-तन्त्र (सर्जरी), चिकित्सा (मेडिसिन) और द्रव्य-गुण (मैटीरिया मेडिका) का वर्णन है। पूर्व लेखकों की रचनाओं के आधार पर संकलित इस ग्रन्थ में हिन्दू वैद्यों द्वारा चिकित्सा में प्रयुक्त किये जाने वाले सब चिकित्सा-पौदों और प्राणिज तथा खनिज पदार्थों का उसमें संक्षिप्त और स्पष्ट वर्णन है। यद्यपि इस

ने अधिक सामग्री आयुर्वेद के आधारभूत मौलिक ग्रन्थों से ही ली है तथापि कुछ नई औषधियों के वर्णनों और कुछ नये रोगों के सम्बन्ध में इसने काफी नई सामग्री दी है। वास्को डि० गामा १४९२ ई० में हिन्दुस्तान में सिफिलिस लाया था। इस ग्रन्थमें यह फिरंग रोग नाम से वर्णित है। इस ग्रन्थ के लिखे जाने तक अफीम चिकित्सोपयोग में अच्छी तरह आने लग गई थी। पारे का प्रयोग प्रायः सब रोगों में होने लगा था। सोना, चाँदी, ताँबा,टिन, संखिया (आर्सनिक) आदि व्यवहार में आ चुके थे और पुरातन लेखकों की काष्ठ–औषधियों से ऊंचा स्थान पा चुके थे। हिन्दू व्याधिविज्ञान (पैथोलोजी) और चिकित्सा अपने............तक पहुँच गये थे।

यह बहुत पुराना ग्रन्थ नहीं मालूम होता। प्रचलित भाषा में जिसे हम चोपचीनी कहते हैं उसका इसमें समावेश है। वचा से कुछ सादृश्य रखने के कारण लेखक ने इसे द्वीपान्तर-वचा नाम दिया है। फ्लाकिजर और हैनवरी के मतानुसार फिरंग रोग में इस औषधि का उपयोग पुर्तगालियों को गोआ में चीनी व्यापारियों द्वारा लगभग १७३५ ईस्वी में मालूम हुआ इस लिये भावप्रकाश इस समय के बाद लिखा जाना चाहिये। हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। हमारा विचार है कि लगभग सोलहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में इसका निर्माण हुआ है।

सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, पारा, टिन, सीसा आदि विभिन्न धातुओं को अन्तःप्रयोग के लिये बनाने और अनेक योगों के रूप में खिलाने के लिये विस्तृत निर्देश देने वाला एक संक्षिप्त ग्रन्थ शार्ङ्गधर द्वारा लिखा गया शार्ङ्गधर–संहिता है। अफीम और अकरकरा का इसमें वर्णन है इसलिये यह मुगल–काल में लिखा गया होगा।

मुसलमानी हकीमों अर्थात् भारत के मुसलमान वैद्यों ने भी इस देश की औषधियों के सम्बन्ध में बहुत काफी लिखा है। मुग़ल शासकों द्वारा मुसलमान वैद्यों को प्रोत्साहन मिलने के कारण उन्होंने चिकित्सा पर कई उपयोगी ग्रन्थों का निर्माण किया। देहली के दरबार के संरक्षण में यूनानी हकीमों ने परस्पर सहयोग से देशीय औषधियों के अध्ययन में पर्याप्त ध्यान दिया था देशीय औषधियों पर यूनानी हकीमों के दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से दिखाने वाली एक रचना मख़्ज़न–उल्–अद्विया है। देशीय औषधियों का वर्णन करने वाले मुसलमान वैद्यों द्वारा लिखे गये कई ग्रन्थ हैं —कुछ फारसी में और अन्य उर्दू में।

ह्रास-काल।

भारत में औषधिविज्ञान की उन्नति और ह्रास के समय को यद्यपि हम किसी स्पष्ट रेखा से पृथक् नहीं कर सकते फिर भी कहा जा सकता है कि ह्रास की प्रक्रिया वास्तव में बौद्धधर्म के प्रारम्भ में शुरू हो गई थी। पिछले एक अध्याय में हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि ईस्वी पूर्व ३२७ के ग्रीक आक्रमण में सिकन्दर के भारत में आगमन के समय भारतीय चिकित्सा का ग्रीक लोगों पर कितना प्रभाव पड़ा था। हिन्दू चिकित्सा की निपुणता से विमुग्ध ग्रीक लोगों

ने न जाने कितने हिन्दुओं द्वारा लिखे गये चिकित्सा-ग्रंथ अपने देश को पहुँचाये होंगे और भारत के आयुर्वेदिक साहित्य में कमी की होगी।

बिन्दुसार के पुत्र अशोक के राज्यकाल में यद्यपि आयुर्वेद के अध्ययन को एक प्रवाह मिला और बौद्ध भिक्षुओं द्वारा उसका प्रसार विदेशों में भी हुआ और इन प्रचारकों द्वारा विदेशों से भी कई नवीन औषधियाँ भारत में लाई गईं परन्तु अशोक जिस महान् युद्ध-विप्लव को करके सिंहासन-आरूढ़ हुआ (ईस्वी पूर्व २६४) उसमें जहाँ लाखों निरपराध आदमियों की जानें गईं और उनके घर तथा सम्पत्ति बरबाद हो गई वहाँ सैकड़ों उपयोगी पुस्तकों के नाश की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

भारत में यवनों, शकों (ईस्वी पूर्व लगभग दूसरी शताब्दी) के आक्रमण-काल में भी कोई मौलिक ग्रंथ नहीं लिखे गये और हिन्दू चिकित्सा धीरे धीरे ह्रास की ओर चली गई। विक्षुब्ध समयों में बहुत सा आयुर्वेदिक साहित्य नष्ट और लुप्त हो गया। आयुर्वेद की कई शाखायें पुरोहितों के हाथों में गईं और औषधियों तथा बूटियों का तन्त्रों और मन्त्रों के साथ अधिक प्रयोग होने लगा। चिकित्सक स्वयं ब्राह्मण की उपजाति का एक अङ्ग बन गया। उन में से एक बड़ा हिस्सा आयुर्वेद के अध्ययन, विशेषकर शल्यतन्त्र को और उस पेशे को नीची निगाह से देखने लगा। शव को स्पर्श करना पाप समझा जाने लगा और शवच्छेदन बन्द हो गया, जिससे शारीर शास्त्र (एनाटमी) और शल्यक्रिया (सर्जरी) का ज्ञान स्वभावतः ही क्षीण हो गया। बौद्धों के अहिंसा के सिद्धान्त ने भी इस दिशा में काफी प्रभाव डाला। अशोक के राज्यकाल में शवच्छेदन आदि का राज-आज्ञा से निषेध हो गया था। इस समय शल्यतन्त्र यद्यपि बहुत हद तक अवनति की ओर गया परन्तु चिकित्सा ने फिर शीघ्र उन्नति की। बौद्धधर्म की समाप्ति के साथ साथ चतुर्मुख ह्रास होने लगा। चिकित्सा और शल्यक्रिया दोनों में अवनति हुई और यह अवनति लगभग मुसलमानों के समय खूब जोरों पर थी।

विदेशी जातियों के भारत में आगमन के साथ साथ आदान-प्रदान में भारत ने निस्सन्देह उनसे बहुत कुछ सीखा और उन को सिखाया परन्तु दो जातियों के सम्मिश्रण और संघर्ष में जहाँ नवीन ज्ञान, विद्या और सभ्यता का प्रादुर्भाव होता है, वहाँ उन जातियों के न जाने कितने उन्नत विज्ञान और विकसित कलाओं का नाश और लोप हो जाता है। भारत भी इस नियम का अपवाद न रहा। विभिन्न कालों में विदेशियों द्वारा इस देश पर किये गये आक्रमणों में भारतीय साहित्य के नष्ट होने में बहुत सहायता मिली। महमूद गजनवी (१००० ई०), मुहम्मद गौरी (बारहवीं शताब्दी), चङ्गेजखाँ (तेरहवीं शताब्दी के मध्य में), तैमूरलङ्ग (चौदहवीं शताब्दी के अन्त में), बाबर (सोलहवीं शताब्दी) आदिकों के आक्रमण कालों में धन और जन के नाश के साथ साथ हिन्दुओं के ज्ञान तथा विद्या का भी नाश हुआ और बहुत सा आयुर्वेदिक

साहित्य नष्ट हो गया। आक्रमणकारियों द्वारा हजारों पुस्तकों से भरी हुई अलमारियों वाले विशाल पुस्तकालयों में आग लगा देना आदि घटनाएँ भारतीय इतिहास के पन्नों में आसानी से देखी जा सकती हैं।

विक्षुब्ध समयों के बीच में नष्ट और खण्डित ग्रंथों का संस्कार और संग्रह करने वाले चरक, दृढबल और वाग्भट, माधवकर, शार्ङ्गधर आदि टीकाकारों का प्रादुर्भाव होता रहा जिन के द्वारा प्राचीन आयुर्वेदिक साहित्य के सुरक्षित रहने के कारण आधुनिक भारत भी इसका कृतज्ञ है।

मुसलमान आक्रमणकारी अपनी व्याधि–निवारण को विद्या भी अपने साथ लाये जो उस समय के लिहाज से अच्छी उन्नत थी। भारत जब मुगल शासन के अधीन होगया तो मुसलमानी वैद्यों को, जिन्हें यूनानी हकीम कहा जाता था, राज्य ने अपनाया। भारत में अरबी चिकित्सा प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ और रोग से मुक्त करने की यह सरकारी प्रणाली हो गई। मुगल शासकों द्वारा हिन्दू वैद्यों को उपेक्षा से देखा जाना स्वाभाविक था। चिकित्सा की पुरातन हिन्दू या आयुर्वेदिक प्रणाली शीघ्रता से पीछे फेंक दी गई जिस से भारतीय चिकित्सा के ह्रास में इस का पर्याप्त असर पड़ा।

मुगल शासन के पतन के साथ साथ अरबी या मुसलमानी चिकित्सा–प्रणाली भी शीघ्रता से क्षीण हो गई। पुरातन हिन्दू चिकित्सा और अरबी चिकित्सा प्रणाली के कई शताब्दियों तक निकट सम्पर्क में रहने के कारण पर्याप्त सम्मिश्रण हुआ और दोनों एक दूसरे के औषधि–विज्ञान का खुला उपयोग करते रहे।

यूरोपियनों के आगमन के साथ साथ यद्यपि दोनों पद्धतियाँ ही ह्रास की ओर गईं परन्तु परिणाम यह हुआ कि दोनों के मिलने से सम्मिलित औषधि–विज्ञान का एक समृद्ध कोश पीछे रह गया। पुर्तगालियों, फिर फ्रांसीसियों और अन्त में अंग्रेजों के हिन्दुस्तान में प्रवेश के साथ साथ ह्रास की प्रक्रिया जारी रही।

भारत में ब्रिटिश राज्य स्थापित हो जाने पर पश्चिमीय चिकित्सा–पद्धति का, जिसे ऐलोपैथी कहा जाता है, इस देश में प्रवेश हुआ। प्रारम्भ में शासकों का इससे इलाज किया जाता था और इसी इरादे से यह पद्धति हिन्दुस्तान में प्रविष्ट हुई थी परन्तु सुव्यवस्थित तथा नवीन होने के कारण और इसी लिए आकर्षक होने से यह प्रणाली प्रचलित होने लगी और लोगों ने इसका उत्साहजनक स्वागत किया। इस नवीन प्रणाली की शल्य–कर्म (सर्जरी) की सफलताओं ने विशेषकर लोगों को बहुत अधिक प्रभावित किया। यह अपने साथ अपना निजी औषधि–विज्ञान भी लाई और फिर आदान–प्रदान भी हुआ तथा साथ ही इस देश में चिकित्सोपयोगी नवीन पौदों का आगमन भी। इस प्रणाली से यद्यपि भारतीय वैद्यों ने निस्सन्देह बहुत कुछ सीखा परन्तु हिन्दू चिकित्सा पद्धति कहीं पीछे रह गई।

ब्रिटिश राज्य में चिकित्सा की हिन्दू पद्धति की वही अवस्था हुई जो मुसलमान शासकों के काल में थी। ऐलोपैथी रोगनिवारण की शासकों की प्रणाली होने से राज्य ने इसका विस्तार करने में हर प्रकार को सहायता और सुविधायें प्रदान कीं। इस समय हिन्दुओं की जीवन की विद्या, आयुर्वेद, को राज्य ने तुच्छ, अव्यवस्थित और अवैज्ञानिक समझा। भारतीय शिक्षित जनता में भी यही विचार घर कर गया और आयुर्वेद अशिक्षित लोगों की व्याधि दूर करने की विद्या समझा जाने लगा। जब भारतीय जनता ने ही अपनी चिकित्सा-पद्धति को उपेक्षा और अनादर की दृष्टि से देखा तब विदेशी शासकों द्वारा इसको प्रोत्साहन न मिलना सर्वथा सम्भव था।

इस निबन्धमाला में निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता ली गई है :—

१—प्रिमिटिव कल्चर; टेलर (१९०३)।

२—एन्शिएण्ट इण्डिया; जे० डब्ल्यू० मैक्क्रण्डल (१९०१)।

३—हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री; सर प्रफुल्लचन्द्रराय।

४—सर्जिकल इन्स्ट्रूमेंट्स आफ दी हिन्दूज़; गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।

५—इण्डियन मेडिसिनल प्लाण्ट्स का इण्ट्रोडक्शन; बी० डी० बसु।

६—इण्डिजिनस ड्रग्स आफ इण्डिया; आर० एन० चोपड़ा।

७—एनल्स आफ दी भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट; भाग १९, १९३८।

८—इत्सिङ्ग की भारत-यात्रा; सन्तराम बी० ए० द्वारा हिन्दी में अनूदित।

९—अलबेरुनी की भारत-यात्रा; सन्तराम बी० ए० द्वारा हिन्दी में अनूदित।

१०—भारतीय इतिहास की रूपरेखा; जयचन्द्र विद्यालङ्कार।

११—मौर्य साम्राज्य का इतिहास; सत्यकेतु विद्यालङ्कार।

१२—विनयपिटक महावग्ग (पाली); सद्धातिस्स तथा सरणतिस्स थेर।

१३—प्रत्यक्षशारीरम् का उपोद्घात; कविराज गणनाथसेन।

१४—कौटिलीय अर्थशास्त्र।

१५—ऋग्वेद; सायणभाष्य।

१६—अथर्ववेद; सायणभाष्य

१७—काशिका; जयादित्य तथा वामन।

१८—महाभाष्य; पातञ्जलि।

१९—चरकसंहिता; जयदेव विद्यालङ्कार।

२०—सुश्रुतसंहिता।

२१—अष्टाङ्गहृदय; वाग्भट।

२२—अष्टाङ्गसंग्रह; वाग्भट।

२३—भावप्रकाश।

२४—रसरत्नसमुच्चय।

इत्यादि।

(समाप्त)